ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

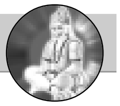

शाश्वत ज्योति

शाश्वत दर्पण

- **अर्न्तमन से** ❑ म.म. स्वामी उमाकान्तानन्द सरस्वती जी महाराज.... 2
- शिव कथा– **अविरल अमृत प्रवाह** ❑ म.म.डॉ. स्वामी उमाकान्तानन्द सरस्वती जी महाराज 3
- गीता काव्य– **गीता महिमा** ❑ माधव पाण्डेय निर्मल 8
- नेताजी जयंती पर विशेष– **सुभाषचन्द्र बोस** ❑ साभार 9
- इतिहास–संस्कृति–**सूत्र साहित्य का संक्षिप्त परिचय** ❑ डॉ. देवेन्द्र गुप्ता 10
- कथा संदेश–**वशिष्ठ जी का उपदेश** ❑ म.म.डॉ. स्वामी उमाकान्तानन्द सरस्वती जी महाराज 14
- आयुर्वेद–**काल से रक्षा करने वाली कालमेघ** ❑वैद्य दीपक 17
- ज्योतिष–**आर्थिक तंगी और कर्ज से मुक्ति** ❑ कौशल पाण्डेय (ज्योतिषी) 19
- इतिहास दर्शन–**शिष्टाचार** ❑ साभार 20
- अंतर के खजाने–**खुशी पाने की चाह** ❑ मनोहर लाल 21
- **चिन्तन** ❑ म.म.डॉ. स्वामी उमाकान्तानंद सरस्वती 22
- भक्ति दर्शन–**जन्म जन्म मुनि जतन कराही** ❑ म.म. डॉ. स्वामी उमाकान्तानंद सरस्वती जी महाराज 23
- धर्म–कर्म–**भूमिका 'अध्यात्म' दीक्षा की** ❑ पं.श्रीराम शर्मा आचार्य....... 27
- प्रेरक प्रसंग–**ईश्वर में विश्वास रखने की सीख** ❑ मोहित पाण्डेय....... 30
- पारिवारिक प्रेरणा–**एक चुटकी जहर रोजाना** ❑ साभार 31
- भक्ति दर्शन–**भक्त वत्सल भगवान** ❑ डॉ. अनिल त्रिपाठी....... 33
- अध्यात्म दर्शन–**तत्वदर्शी सन्त की क्या पहचान है तथा प्रमाणित सदग्रन्थों में प्रमाण** ❑ कौशल पाण्डेय 35
- वर्तमान कालिक चिंतन–**कल्याण मन्दिर का प्रवेश द्वार** ❑ अशोक गुप्ता 37
- शंका–समाधान–**अविनाशी परमात्मा कौन है** ❑ रामपाल....... 38
- शाश्वत संदेश–**गीता का ज्ञान कब किसने, किसको सुनाया** ❑ रामपाल 39
- बलिदान–**तपस्वी की गुरुदक्षिणा** ❑ प्रो. वीरेन्द्र अग्रवाल....... 42
- कर्मफल–**बोया काटा सिद्धान्त** ❑ डॉ. अनिल त्रिपाठी 44
- आत्म विश्वास–**श्रद्धा का प्रकटीकरण करने की आवश्यकता** ❑ प्रो. वीरेन्द्र अग्रवाल 45
- प्रेरक–प्रसंग–**बनावटी दर्द** ❑ अभिषेक शुक्ला 47
- **व्रत त्यौहार** 48

संरक्षक सदस्य

श्रीमहन्त पू. स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती, श्रीमहन्त विद्यानंद सरस्वती, स्वामी रविन्द्रानन्द सरस्वती, स्वामी देवानन्द सरस्वती, श्री प्रवीन अग्रवाल, श्री अनिल चौधरी, श्री बी.एन. तिवारी, डॉ. संजय सिन्हा, श्री नरेन्द्र सोमानी, श्री आर.के. सिंह, श्री प्रशान्त सोमानी, श्री राजेन्द्र सिंह, श्री शशिधर सिंह, श्री ब्रजकिशोर सिंह, डॉ. संजय पासवान (पूर्व केन्द्रीय मंत्री), स्वामी विवेकानन्द,

प्रधान सम्पादक/संस्थापक

महामंडलेश्वर

डॉ. स्वामी उमाकान्तानन्द सरस्वती जी महाराज

प्रबन्ध सम्पादक - प्रो. वीरेन्द्र अग्रवाल

कार्यकारी सम्पादक - **श्री प्रेमशंकर ओझा**

सम्पादक मण्डल - शत्रुघ्न प्रसाद, बालकृष्ण शास्त्री, श्रीमती राखी सिंह, अभिजीत तुपदाले, डॉ. दीपक कुमार, डॉ. हरेश प्रताप सिंह, श्री कुलदीप श्रीवास्तव, डॉ. सुखेन्दु कुमार, दिनेशचन्द्र शर्मा

आवरण सज्जा - आनन्द शुक्ला

व्यवस्था मण्डल - श्री वीरेन्द्र सोमानी, श्री संजय अग्रवाल, राजेन्द्र प्र. अग्रवाल (मथुरा वाले), श्री सुभाषचन्द्र त्यागी, श्री गोपाल सचदेव, श्री रविशरण सिंह चौहान, श्री महेन्द्र सिंह वर्मा, श्री राजनारायण सिंह, श्री अश्विनी शर्मा, श्री सुरेश रामबर्ण (मॉरीशस)

वित्तीय सलाहकार - श्री वेगराज सिंह

विधि सलाहकार - श्री अशोक चौबे

परामर्श एवं सहयोग-श्री राजेन्द्र अग्रवाल, श्री श्यामबाबू गुप्ता, श्री शिलेश्वर मानिकतला, श्री नरेन्द्र वाशनिक (निक्की), श्रीमती नैना बेनबीड़ीवाला

विज्ञापन व्यवस्था - श्री दयाशंकर वर्मा

प्रमुख संवाददाता - श्री मोहन सिंह

(प्रकाशन में लगे सभी व्यक्ति अवैतनिक है)

मूल्य - 25/-

वार्षिक चन्दा - 150/-

आजीवन - 3000/-

दिल्ली सम्पर्क सूत्र : 305-308, **प्लाट नं. 9, विकास सूर्या गैलेक्सी, सेक्टर-4, सेन्ट्रल मार्केट, द्वारका, नई दिल्ली-110075**

मोबाईल +91-8010188188

सम्पर्क सूत्र :

महामंडलेश्वर डॉ. स्वामी उमाकान्तानन्द सरस्वती जी महाराज

आदर्श आयुर्वेदिक फार्मेसी, कनखल, हरिद्वार (उत्तराखंड)

फोन- 01334-2626 00, मोबाइल-09897034165

E-mail: Umakantmaharaj@hotmail.com, swamiumakantanand@gmail.com

स्वामित्व-डिवाइन श्रीराम इण्टरनेशनल चैरिटेबल ट्रस्ट (रजि.) के लिए मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक- डॉ. स्वामी उमाकान्तानन्द सरस्वती द्वारा माँ गायत्री ऑफसेट प्रिन्टर्स, आर्यनगर, ज्वालापुर, हरिद्वार (उत्तराखंड) से मुद्रित तथा आदर्श आयुर्वेद फार्मेसी कनखल, हरिद्वार से प्रकाशित। साज सज्जाः स्वामिनारायण प्रिंटर्स, फोन- 09560229526, 011-45076240

अंतर्मन से..................

आत्मीय पाठकों/ भक्तों,

हर इंसान की आकांक्षा होती है कि वह अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करें। वह एक महापुरुष बनें अथवा समाज में एक श्रेष्ठ मुकाम हासिल करे। परन्तु अधिकर लोगों की आकांक्षायें अधूरी रह जाती हैं। मनसूबे धरे के धरे रह जाते हैं। आखिर में हार कर अपने आदर्शों अपने उद्देश्यों के चााहत के साथ समझौता कर लेते हैं। यह कहते सुना जाता था कि कभी हम भी ऐसे थे, वैसे थे लेकिन अब जिन्दगी बीत गई, अब तो किसी तरह जिन्दगी कटती है।

क्या महान लोग महानता लेकर ही पैदा होते हैं। क्या श्रेष्ठतम गुणों का विकास इस संसार में सम्भव नहीं। क्या इस जीवन को गढ़ने का उपाय नहीं। अगर अपने अन्दर सद्‌गुणों का विकास करके जीवन को श्रेष्ठ बनाया जा सकता है। तो इस संसार में मनचाही जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने का यदि उपाय है, तो वह कौन सा रहस्य है जिसको हम महानतम उपलब्धियों के मालिक बन सकते हैं।

हर इंसान के जीवन में जिस चीज की सबसे बड़ी भूमिका होती है। वह है संस्कार, वास्तव में व्यवहारिक रूप से संस्कार का अर्थ क्या होता है। अच्छे और बुरे अभ्यासों की आदत ही अन्तर्मन के गहराई तक बैठ जाने की प्रक्रिया ही संस्कार है। जब बुरी आदतें अभ्यास में घर कर जाती है तो उसे ही हम कुसंस्कार कहते हैं और जिस व्यक्ति का व्यवहार ऐसा होता है उसे हम कुसंस्कारी कहते हैं? ठीक इसी प्रकार जिन लोगों के जीवन में उनकी आदतें अच्छी होती है उनको सुसंस्कारी कहा जाता है। वास्तव में आदमी का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता है। जैसे अच्छे और बुरे आदमी अच्छी या बुरी आदतें आदमी के अन्दर होती है। वही उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करती है। आदमी आदतों का गुलाम होता है। अत: इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि यदि जीवन में कुछ श्रेष्ठ करना है तो अपनी आदतों में सुधार लाना चाहिये। सबसे पहले जीवन का लक्ष्य निर्धारण होना चाहिए कि हमें करना क्या है? पाना क्या है? बनना क्या है? एक गोल और एक रोल मॉडल का होना प्रथम आवश्यकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम लक्ष्य का निर्धारण कैसे करें? इसके लिए सबसे पहले जरूरी है कि हम अपने जीवन में किसी महापुरुष, श्रेष्ठ पुरुष अथवा समाज में सफलता के शिखर पर पहुँचे व्यक्ति को अपना आदर्श या रोल मॉडल बनायें। फिर उनकी जीवनी का अध्ययन करें। आपका आदर्श व्यक्ति धर्मात्मा एवं विश्व का सफलतम व्यापारी हो, कोई सफल राजनेता या कोई अब्दुल कलाम जैसा वैज्ञानिक हो सकता है। जब हम किसी भी बड़े व्यक्तित्व की जीवनी का अध्ययन करते हैं तो हम उसी दिव्य भाव में मानसिक रूप से सूक्ष्म लोकों का भ्रमण करते हैं और हमें ऐसा एहसास होता है। कि उस रोल मॉडल के जगह हम ही है। धीरे-धीरे वे सारे सद्‌गुण अपने आप हमारे गुणों में शामिल होने लगते हैं जो हमारे हीरो में दिखाई देती है।

नित्य आप अपने आदर्श के अच्छे गुणों के बारे में सोचिये एक दिन आप वही हो जायेंगे। गुण और अवगुण हर इंसान के जीवन में होती है, परन्तु कुछ श्वांस गुण या आदतें ऐसी हर महापुरुष के जीवन में सामान्य रूप से होती है। हमने ऊपर भी उल्लेख किया कि इस संसार में महानता के उच्च शिखर तक पहुँचने के लिए किसी को भी बहुत बड़े मेहनत की आवश्यकता नहीं होती बल्कि कुछ अच्छी आदतें जो सफल लोगों की होती है उनका अभ्यास अपने जीवन के अन्दर अपनी आदत का अंग बना लिया जाय। अगर केवल मेहनत ही सफलता का राज होता तो ठेला चलाने वाले, मजदूरी करने वाले, पान की दुकान चलाने वाले आठ से बारह घंटे तक मेहनत करते है ये लोग बड़े और सफल हो जाते। परन्तु ऐसा नहीं होता ये लोग बहुत मेहनत करके भी सामान्य ही रह जाते है और इसके विपरीत जो अपनी आदतों को श्रेष्ठतम गुणों से भरकर समय का सही उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से करते है वो सफल हो जाते हैं।

एक आम आदमी जीवन में बहुत कुछ करने की आकांक्षा रख कर भी आखिरी तक निराश और असफलता के गर्त में ही अपने को पाता है। ऐसा नहीं कि इनके अन्दर कुछ खास करने की सम्भावनाएं नहीं थी। परमात्मा में हर इंसान के अन्दर असीम शक्तियाँ ही है जो उस शक्तियों की जगह है, उनका सही उपयोग करता है और सफल हो जाता है। निराशा और असफलता का मूल कारण हम चाहकर भी अपनी ऐसी आदतों को बदलने के लिए तैयार नहीं है। जो हमें अपने लक्ष्य के विपरीत ले जा रही होती है। कई बार बदलाव का विचार भी करते है लेकिन कल पर छोड़ देते है और सच्चाई यह है कि कल कभी नहीं आता और धीरे- धीरे जीवन हाथ से निकल जाता है। जीवन आज में जीना सीखें। बुरी आदतों को आज से ही बदलने की शुरुआत करें। विज्ञान आज यह मानता है कि एक आदमी किसी कार्य को 30 दिनों तक लगातार करता है तो वह उसकी आदत बन जाती है। फिर वह नहीं चाहकर भी वैसा ही करता है।

लोग कहते है हमें गाली देने की आदत है, क्रोध, करने की आदत है, हमें देर तक सोने की आदत है, हमें शराब पीने की आदत है आदि-आदि। अगर हम आदतों को बदल लें तो हम यह क्यों नहीं कह सकते कि हमें गाली नहीं देने की आदत है, हमें क्रोध नहीं करने की आदत है, हमें जल्दी सोने और जल्दी उठने की आदत है, हमें शराब नहीं पीने की आदत है। सारा खेल आदत का ही है। जैसी आदत अपने अभ्यास में डालेंगे वैसे ही हो जायेंगे।

अब यहाँ यह समझ ले करना क्या है। महापुरुषों के जीवन के श्रेष्ठ आदतों में से अधिक से अधिक अपने अभ्यास में लायें और विशेष रूप से कुछ चीजें हम यहाँ आपको बता रहे है। जो हर सफल व्यक्ति के अन्दर होती है। कम से कम इतना प्रतिदिन अवश्य करें। 1. प्रात: उठने के बाद थोड़ी देर शान्त और एकान्त में रहें, चाहे बैठ कर करें या लेट कर मन को विचारों से खाली करें जितना हो सके। अपने मन को श्रेष्ठ विचारों से भरे ईश्वर को धन्यवाद दें, भाव करें हम ईश्वर के राजकुमार है। हम अनन्त शक्तियों के स्वामी है। ईश्वर ने हमें इस धरती पर श्रेष्ठ उद्देश्य और विशेष कार्य हेतु भेजा है। हम आनन्द स्वरूप है। निराशा, ठगी, असफलता हमें स्पर्श नहीं कर सकती। 2.शांति और प्रेम से अपने को भरिये। 3.थोड़ी देर ध्यान करें अथवा अपने गुरु द्वारा प्रदत्त संग का जप करें। अपना सम्बंध उस विराट परमात्मा का जोग हो और अनन्त के प्रवाह को अपने अन्दर आने दें। 4. नियमित व्यायाम और योग का क्रम बनाये। 5. कुछ देर अच्छी पुस्तकों का अध्ययन जरूर करें जो आपके विचारों को शक्ति दे सकें। 6. दिन भर के कार्यो की योजना बनायें। उनमें से पिछले दिन की छोड़ी हुई अति आवश्यक कार्यों को पहले करें।

स्वामी उमाकान्तानन्द सरस्वती

(स्वामी उमाकान्तानन्द सरस्वती)

अविरल अमृत प्रवाह

-महामंडलेश्वर डॉ. स्वामी उमाकान्तानन्द सरस्वती जी महाराज

गतांक से आगे

हिमाचल-विवाह

नारदजी बोले-हे ब्रह्मन्! सती ने पर्वत की कन्या होकर कैसे तप कर शिवजी को प्राप्त किया। ब्रह्माजी बोले-हे मुनि! जब सती ने दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर त्याग दिया, तब उन्होंने हिमाचल के घर जन्म लेने का विचार किया। क्योंकि शिवलोक में स्थित मेनका ने सती देवी के लिए आराधन किया था। समय आने पर वही देवी अपना शरीर त्याग मेनका की पुत्री बन गई। तब इस जन्म में उस सती देवी का नाम पार्वती हुआ और उन्होंने नारदजी का उपदेश ग्रहण कर अत्यन्त कठिन तप कर शिवजी को प्राप्त किया। नारदजी बोले-हे ब्रह्मन्! अब मेनका की उत्पत्ति, विवाह और चरित्र मुझे सुनाइये। ब्रह्माजी बोले-हे नारद! उत्तर दिशा में हिमाचल नाम का एक महान् राजा था जो कि अपने श्रेष्ठ पर्वत की सब समृद्धियों से युक्त और बड़ा ही तेजस्वी था। उस पर्वत का बड़ा ही दिव्य रूप है और जो सर्वांग सुन्दर, विष्णु का रूप, सन्तों का प्रिय और शैलराज के नाम से प्रसिद्ध है। वह हिमाचल भी कहा जाता है और उस पर्वत के जंगम और स्थिर दो भेद हैं। उसी शैलराज ने अपने कुल की स्थिति और

सती ने पर्वत की कन्या होकर कैसे तप कर शिवजी को प्राप्त किया। ब्रह्माजी बोले-हे मुनि! जब सती ने दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर त्याग दिया, तब उन्होंने हिमाचल के घर जन्म लेने का विचार किया। क्योंकि शिवलोक में स्थित मेनका ने सती देवी के लिए आराधन किया था। समय आने पर वही देवी अपना शरीर त्याग मेनका की पुत्री बन गई।

धर्मवर्द्धन के लिए अपना विवाह करने की इच्छा की। तब उसकी इच्छा होते ही समस्त देवतागण पितरों के पास गये और बोले कि यदि आप सभी लोग अपना कर्तव्य पालन करना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि देवताओं का कार्य होवे तो आप मंगल रूपिणी कन्या मेनका का विवाह हिमाचल पर्वत के साथ कर दीजिये। इससे सभी का भला होगा और देवताओं के पद-पद होने वाले दु:ख और हानि का नाश होगा। ब्रह्माजी कहते हैं कि देवताओं का कथन पितृगणों को अच्छा लगा और उन्होंने अपनी पुत्रियों के शाप की बात याद कर अपनी पुत्री मेनका का विवाह हिमाचल के साथ कर दिया। उस विवाह में बड़ा उत्सव हुआ और हरि आदि सभी देवता विवाह में सम्मिलित हुए। फिर विवाह का उत्सव समाप्त होने पर सभी देवता और मुनीश्वर शिव-पार्वती का ध्यान कर अपने लोक को चले गये।

एक समय ये तीनों बहिनें श्वेतद्वीप में विष्णुजी का दर्शन करने गईं तो वहाँ बड़ा भारी समाज एकत्रित हो गया जिसमें ब्रह्मपुत्र सनकादिक भी आये और सबने विष्णुजी की स्तुति की और सनकादिकों को देखकर सभी लोग उनके स्वागतार्थ उठ खड़े हुए।

पूर्व आख्यान

नारदजी बोले-हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! अब आप मेनका की उत्पत्ति और पितरों के शाप की कथा भी कहिये। ब्रह्माजी कहने लगे-हे सुवर्य नारद! अब तुम इन मुनियों के मण्डल में बैठे हुए मेनका की उत्पत्ति सुनो। मेरा पुत्र जो दक्ष था उसके साठ पुत्रियाँ हुईं। जिनके विवाह उसने कश्यपादि महर्षियों के साथ कर दिये थे। उनमें स्वधा नामवाली कन्या को उसने पितरों को दिया था, जिससे कि धर्ममूर्ति तीन कन्याएं उत्पन्न हुईं। उनमें बड़ी पुत्री का नाम मेनका, दूसरी का नाम धन्या और तीसरी का नाम कमलावती था। ये तीनों पितरों के मन से उत्पन्न हुई थीं। इससे ये अयोनिजा मानी गईं। इनका नाम लेकर मनुष्य सारे लाभ प्राप्त कर लेता है।

ये तीनों जगत्वंद्य माताएं हुईं और ज्ञान की निधि तथा तीनों लोकों में विचरण करनेवाली हुईं। हे मुनीश्वर! एक समय ये तीनों बहिनें श्वेतद्वीप में विष्णुजी का दर्शन करने गईं तो वहाँ बड़ा भारी समाज एकत्रित हो गया जिसमें ब्रह्मपुत्र सनकादिक भी आये और सबने विष्णुजी की स्तुति की और सनकादिकों को देखकर सभी लोग उनके स्वागतार्थ उठ खड़े हुए। परन्तु ये तीनों बहिनें उनके समादर के लिए न उठीं। क्योंकि शंकरजी की माया ने उन्हें मोहित कर दिया था। शिवजी की बलवती इच्छा। वही प्रारब्ध है और उनके बहुत नाम हैं। सारा जगत् उनके अधीन है। उसी के वश में होकर उन तीनों कन्याओं ने भी सनकादिकों को प्रणाम नहीं किया और आश्चर्य में पड़ी हुई केवल बैठी ही रह गईं। उनके उस दुर्व्यवहार से क्रुद्ध होकर सनकादिकों ने उन्हें दण्डित करना चाहा और योगीश्वर सनत्कुमार ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम तीनों श्रुति की जाननेवाली थीं, तुमने अभिमानवश हमें खड़े होकर अभिवादित नहीं किया और नमस्कार भी नहीं किया। अतएव तुम स्वर्ग से दूर जाकर मनुष्य बन जाओ। अब तुम तीनों मनुष्य की स्त्रियाँ बनो। हम क्या करें? तुम्हारा कर्म ही ऐसा था। अब उसी का फल चखो।

ब्रह्माजी कहते हैं कि उन तीनों साध्वी बहिनों ने चकित होकर ऋषि का वचन सुना और सिर झुकाकर उनके चरणों पर गिरती हुई बोलीं-''हे मुनिवर्य! हे दयासागर! इस समय प्रसन्न हो जाइये। हम लोग मूढ़ हैं। इसीसे हम लोगों ने आपको प्रणाम नहीं किया। हे महामुने! इसमें आपका कोई दोष नहीं है। अतएव ऐसी कृपा कीजिए जिसमें कि हम स्वर्ग को पुन: प्राप्त कर लें।'' शिवजी की माया! वह माया सनत्कुमार पर चढ़ बैठी। अब वे उनके शापोद्धार की बात कहने लगे। उन्होंने कहा-हे पितरों की कन्याओं! अब तुम प्रसन्न होकर मेरे वचनों को सुनो, जिस प्रकार तुम्हें सर्वथा सुख प्राप्त होगा। हिमाचल पर्वत हिम का आधार है। यह ज्येष्ठा उसकी कामिनी होगी और इसको पार्वती नाम की एक कन्या प्राप्त होगी। यह दूसरी कन्या धन्या है जो कि महायोगिनी जनक की पत्नी होगी और जिस महायोगिनी के यहाँ यह महालक्ष्मी सीता होकर उत्पन्न होगी। कमलावती वृषभान की पत्नी होगी और इस प्रकार द्वापर के अन्त में यही लक्ष्मी उसकी पुत्री प्रिया राधा के नाम से प्रकट होगी। मेनका को पार्वतीजी का वर प्राप्त होगा और वह कैलाश तक जायेंगी। धन्या जनक वंश में सीता को उत्पन्न

कर शीरध्वज के मिलने पर बैकुण्ठ तक जायेंगी। कमलावती वृषभानु को प्राप्त हो उसके साथ कौतुक क्रीड़ा द्वारा राधा के साथ जीवन्मुक्त हो गोलोक तक जायेगी। इसमें सन्देह नहीं। भला बिना विपत्ति उठाए कहीं किसी की महिमा होती है? अच्छे कर्मवालों का दु:ख दूर हो जानेपर उन्हें दुर्लभ सुख प्राप्त होता है। तुम पितरों की कन्या हो, इसलिए तुम्हें स्वर्ग का विलास ही चाहिए। इसलिए जब तुम विष्णुजी के दर्शन करोगी तो तुम्हारा कल्याण होगा। तुम शिवजी में भक्ति करनेवाली हो, इससे तुम धन्य और पूज्य हो। मेनका से पार्वती देवी उत्पन्न हो अपने कठिन तप के द्वारा शिवजी की प्रिया होगी और धन्या की पुत्री सीता श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी होगी तथा कमलावती की पुत्री राधा श्रीकृष्ण की पत्नी होगी। ऐसा कह मुनिराज अन्तर्धान हो गये और वे तीनों बहिनें भी सुखी हो अपने धाम को चली गईं।

जब मैना से विवाह कर पर्वत अपने घर आ गया और प्रसन्न हो मैना के साथ विभिन्न सुखदायक स्थानों में जाकर विहार करने लगा। उसी समय सब देवताओं को साथ लिए विष्णुजी हिमाचल के पास गये।

उमा की स्तुति

नारदजी बोले–हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी! पार्वतीजी मैना से कैसे उत्पन्न हुईं और उन्होंने दु:ख सह तपकर शिवजी को वर रूप में कैसे प्राप्त किया?

ब्रह्माजी बोले–हे मुनि! जब मैना से विवाह कर पर्वत अपने घर आ गया और प्रसन्न हो मैना के साथ विभिन्न सुखदायक स्थानों में जाकर विहार करने लगा। उसी समय सब देवताओं को साथ लिए विष्णुजी हिमाचल के पास गये। हिमाचल ने अपने को सब प्रकार से भाग्यशाली जाना और उनका बड़ा सत्कार किया। उसने कहा–आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरा बड़ा तप, ज्ञान और सभी कार्य सफल हो गये कि इस प्रकार आप सब लोगों को एक ही साथ अपने घर आया हुआ देख रहा हूँ। कहिए मेरे योग्य क्या सेवा है?

यह सुन हरि आदि देवताओं को विश्वास हो गया कि अब मेरा कार्य सिद्ध होगा। उन्होंने हिमाचल से कहा–हे महाप्रज्ञ! जो पहले जगदम्बा उमा दक्ष की कन्या शिवजी की पत्नी हुई थीं और जिन्होंने अपने पिता के अनादर से अपने प्रण का स्मरण कर अपना शरीर त्याग दिया था, वह सारी कथा आपको भी ज्ञात है। अब वही आपके घर में प्रकट हों, आप इसके लिए उपाय करें, इसलिए हम लोग यहाँ आये हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हरि आदि के ऐसा कहते ही हिमाचल ने तथास्तु अर्थात् ऐसा ही हो कह दिया। तब सब देवता शंकर की पत्नी उमा की शरण में गये और एक अच्छे स्थान में बैठकर जगदम्बिका का स्मरण करने लगे। उन्होंने दण्डवत् कर उन देवी को प्रसन्न करने के लिए कहा–हे उमा! हे देवी! हे माता! आप सर्वदा शिवलोक निवासिनी और सर्वदा ही शिव की प्रिया हैं। हे दुर्गे! हे महेश्वरी! हम सब आपको प्रणाम करते हैं, इत्यादि। इस प्रकार उनकी बड़ी स्तुति की।

देवताओं को सान्त्वना

ब्रह्माजी बोले–देवताओं ने इस प्रकार स्तुति की तो कष्ट निवारणी दुर्गा देवताओं के समक्ष प्रकट हो गईं। सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे कि हे माता! क्षमा कीजियेगा। हे शिवे! सनत्कुमार के वचन को पूर्ण कीजिये। हे देवि! अब तुम फिर पृथ्वी पर अवतार लो। शिवजी की पत्नी बनो। अपनी अद्‌भुत लीला से देवताओं को सुखी करो। देवताओं की इस प्रकार की प्रेम एवं भक्तिपूर्ण विचारधारा को सुनकर शिवा प्रसन्न हो गईं और उसने सब कारण विचार कर अपने प्रभु शिव को स्मरण करती हुई देवी उमा ने हँसकर देवताओं से कहा–हे ब्रह्मा, विष्णु, मुनियों और देवताओं! तुम्हारे दु:ख दूर हों। मैं अवश्य ही पृथ्वी पर अवतार लूँगी। इसके और भी कारण हैं। पहले हिमाचल और उसकी पत्नी ने मेरी सेवा की है। अब भी भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करते हैं। इसलिए मैं हिमाचल के घर प्रकट होऊँगी जिससे तुम्हारे सब दु:ख दूर हो जायेंगे। शिव की लीला बड़ी अद्‌भुत है। इसलिए मैं उन्हीं की पत्नी होऊँगी। वे रुद्र मेरा पाणिग्रहण करना चाहते हैं। अत: मैं हिमाचल के घर जाकर अवतार लूँगी। अब तुम सब देवता अपने स्थान को जाओ। यह कहकर वह विश्वमाता अपने

लोक को चली गई। देवता भी अपने धाम को चले गये।

हिमाचल का तप

ब्रह्माजी बोले-जब देवता हिमाचल तथा मैना को उपदेश करके चले गये थे, तभी से वे दोनों स्त्री-पुरुष भगवान् रुद्र तथा जगदम्बा के ध्यान में निमग्न रहने लगे और उनका श्रद्धा से पूजन करने लगे। वे उमादेवी को सन्तान रूप में पाना चाहते थे। ब्राह्मणों को दान देकर उमादेवी का चैत्र मास से व्रत तथा पूजन आरम्भ कर दिया। वह व्रत तथा पूजन उनका सत्ताईस वर्ष पर्यन्त चलता रहा। सबसे पहले अष्टमी के दिन उपवास किया। फिर नवमी के दिन धूप दीप गन्धादि से उमा देवी का पूजन किया गया। उसके बाद कभी जल के आहार से, कभी वायु के आहार से, कभी निराहार रहकर व्रत पूर्ण किया गया। व्रत के पूर्ण होने पर उमादेवी दोनों पति-पत्नी पर प्रसन्न होकर शीघ्र ही उनके सामने प्रकट हो गईं और हँसकर मैना से बोलीं-हे हिमाचल प्रिये! तुमने केवल मेरी प्राप्ति के लिए व्रत, तप आदि साधन किए हैं। उनसे मैं अतीव प्रसन्न हूँ। इसलिए अपनी इच्छा से वर माँग लो। तब तो मैना बारम्बार नमस्कार करके बोली-हे जगत की मातेश्वरी! आपकी जय हो। मैं तो आपकी ही शरण में हूँ। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो पहला वर मुझे यह दें कि मुझे बड़ी आयुवाले, बलवान, पराक्रमी, ऋद्धि- सिद्धियों युक्त सौ पुत्र प्राप्त हों। दूसरा वर आप ही सुन्दर गुणों से युक्त, रूपवती दोनों कुल तारनेवाली, आनन्द देने वाली, त्रिलोकी में पूज्यनीय, देवताओं के कार्य सिद्ध करने वाली मेरी कन्या के रूप में अवतार लें और मैं आपका भगवान् रुद्र के साथ विवाह करूँ। ब्रह्माजी बोले-हे नारदजी!

ब्रह्माजी कहते हैं कि इसके पश्चात् मैना ने फिर गर्भ धारण किया। उससे मैना की बड़ी शोभा हुई। जिस प्रकार पृथ्वी के भीतर रत्न रहते हैं उसी प्रकार पर्वतराज ने अपनी सगर्भा पत्नी को रत्नगर्भा माना और उसने जिस-जिस वस्तु की कांक्षा की, पर्वतराज ने उसकी प्रसन्नता के लिए दिया।

इस प्रकार मैना के माँगे हुए वरों को सुनकर उमादेवी मन्द-मन्द हँसती हुई बोलीं-हे मैनाजी! तुझे सौ पुत्र प्राप्ति का वरदान दे दिया। उनमें सबसे बड़ा पुत्र अधिक बलवान होगा और दूसरे वर में देवताओं की कार्य सिद्धि के लिए मैं तुम्हारे ही यहाँ पुत्री रूप में अवतार लूँगी। इस प्रकार दोनों वरदान देकर उमादेवी मैना के देखते-देखते ही वोह अन्तर्धान हो गई और मैना ने अपने मनोरथों की सिद्धि प्राप्त की। फिर प्रसन्न होकर अपने घर चली आईं।

घर में आकर हिमाचल से मैना ने श्री उमा देवी को दिए हुए वरों का समाचार कह सुनाया। तब तो दोनों ही अपने भाग्यों की सराहना करने लगे। ब्रह्माजी बोले-कुछ समय के बाद मैना रानी को गर्भ हो गया। पूर्ण समय हो जाने पर ज्येष्ठ पुत्र मैनाक ने जन्म लिया। तब तो हिमाचल के नगर में बड़े भारी उत्सव होने लगे। ब्राह्मणों को बहुत से दान प्राप्त हुए। पति-पत्नी दोनों प्रसन्न हो गये। सौ पुत्रों में मैनाक बड़ा था। वह नाग-कन्याओं का पति बना। जब इन्द्र पर्वतों पर क्रोध करके पर्वतों के पर काटने लगा तब यही मैनाक भय करके समुद्र की शरण में चला गया। वहाँ समुद्र के साथ उसकी मित्रता हो गई।

पार्वती-जन्म

ब्रह्माजी कहते हैं कि इसके पश्चात् मैना ने फिर गर्भ धारण किया। उससे मैना की बड़ी शोभा हुई। जिस प्रकार पृथ्वी के भीतर रत्न रहते हैं उसी प्रकार पर्वतराज ने अपनी सगर्भा पत्नी को रत्नगर्भा माना और उसने जिस-जिस वस्तु की कांक्षा की, पर्वतराज ने उसकी प्रसन्नता के लिए उसे दिया। वैद्यों द्वारा भी गर्भ-पुष्टि के अनेकों उपचार कराये। गिरिराज के प्रसन्नता की सीमा न रहीं। विष्णु आदि देवताओं ने आकर स्तुति की। प्राकृतिक दृश्यों की अपूर्व शोभा छा गई। सर्वत्र सुखदायक वायु बहने लगी। महात्माओं को सुख, किन्तु दूष्टों को दु:ख हुआ। देवता आकाश में दुन्दुभि बजाते, फूलों की वर्षा करते और गन्धर्व गीत गाते। गन्धर्वों की स्त्रियाँ नाचतीं। इस प्रकार आकाश में नित्य ही महोत्सव होता।

उसी समय पूर्ण शक्ति शिवा सती महादेवी मैना के सामने अपने रूप में आकर प्रकट हो गईं। वसन्त ऋतु था और चैत्र का महीना, नवमी तिथि, मृगशिरा नक्षत्र और अर्द्धरात्रि का समय था जब कि चन्द्रमण्डल से गंगा की भाँति भगवती प्रकट हुईं। जैसे लक्ष्मी समुद्र से प्रकट हुईं हों, उसी प्रकार मैना के पेट से भगवती प्रकट हुईं। भगवती के प्रकट होने से

ब्रह्माजी कहते हैं कि इसके पश्चात् मैना ने फिर गर्भ धारण किया। उससे मैना की बड़ी शोभा हुई। जिस प्रकार पृथ्वी के भीतर रत्न रहते हैं उसी प्रकार पर्वतराज ने अपनी सगर्भा पत्नी को रत्नगर्भा माना और उसने जिस-जिस वस्तु की कांक्षा की, पर्वतराज ने उसकी प्रसन्नता के लिए दिया।

शिवजी प्रसन्न हो गये और शुभसूचक सुगन्धित वायु बहने लगी। मेघ-गर्जन के साथ जल-वृष्टि और पुष्प-वृष्टि भी हुई। हिमाचल पर सभी कुछ उत्पन्न होने लगा और उस नगर के सारे दु:खों का विनाश हो गया। तब विष्णु आदि देवता प्रसन्न हो बड़े प्रेम से जगदम्बा का वहाँ दर्शन करने आये और शिवा की बड़ी स्तुति की। देवताओं सहित ब्रह्माजी ने अलग स्तुति की और स्वयं मैना ने भी हे जगदम्बे! हे महेशानि! यह कहकर उन शिवा की बड़ी स्तुति की तथा यह आग्रह किया कि हे महेशानि! अब तुम कृपा कर एक छोटी कन्या के रूप में हो जाओ। हिमाचल की प्यारी मैना के यह वचन सुनते ही देवी प्रसन्न हो तत्काल ही बालरूप में हो गईं।

नारदजी का उमा को तप करने का आदेश

ब्रह्माजी बोले-हे नारदजी! तब तो वह देवी कन्या रूप होकर सांसारिक कन्याओं की भाँति रुदन करने लगी। उस कन्या के रुदन को सुनकर नगर की स्त्रियाँ तुरन्त ही वहाँ दौड़ी आईं। हिमाचल भी यहाँ पुत्री का जन्म सुनते ही अत्यन्त आनन्दित हो गये। नगर की नर-नारियाँ उत्सव करने लगीं। नाच-गान एवं बाजे बजाने लगे। हिमाचल ने विधिपूर्वक जातकर्म किया। ब्राह्मणों को दान दिए। याचकों को मुँह माँगी वस्तुएं देकर प्रसन्न किया। फिर शुभ मुहूर्त में कन्या का नाम संस्कार हुआ। मुनिजनों ने जगदम्बा, तारा, महाविद्या, काली आदि अनेकों नाम बताए। चन्द्रमा की कला की तरह हिमाचल की पुत्री अब धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। उसके अंग-प्रत्यंग चन्द्रमा की कला एवं बिंब के समान अत्यन्त शोभायमान होने लगे। गिरिजा अपनी सहेलियों के साथ खेलने भी लग गईं। उन्होंने अपना प्रभाव छुपा रखा। गंगाजी की रेती से घर बना-बनाकर गेंद से खेलने लगीं एवं और भी अनेकों वेश बदल-बदल कर क्रीड़ाएं करने लगीं। फिर पढ़ने के समय गुरु-गृह में जाकर परम प्रसन्नता से ध्यान लगाकर पढ़ने लगीं।

ब्रह्माजी बोले-हे नारद! तुम शिवलीला को भली-भाँति जानते थे और शिव-प्रेरणा से ही वहाँ गये थे। हिमाचल ने सत्कार किया और अपनी कन्या को तुम्हारे पास लाकर प्रणाम कराया और स्वयं भी बार-बार प्रणाम करने लगे। फिर बोले कि हे नारद मुनिजी! आप भूत, भविष्य, वर्तमान जानते हो। परोपकारी एवं परम दयालु हो। कृपया मेरी कन्या का भाग्य बतायें। जब हिमाचल ने ऐसा कहा कि तुमने श्री पार्वतीजी का हाथ देखकर कहा कि हे पर्वतराज! तुम्हारी कन्या की भाग्य रेखा में सब उत्तम लक्षण हैं। इसका पति योगी, नग्न रहने वाला, निर्गुण, कामवासना रहित, माता-पिता हीन, अभिमान रहित, अपवित्र एवं साधु वेषधारी होगा। इतना सुनते ही दोनों पति-पत्नी अत्यन्त दु:खित हो गये और उमा ने मन में विचार किया कि नारद की बात सदा सत्य होती है। इन लक्षणोंवाले तो रुद्र ही हो सकते हैं। यह विचार आते ही स्वयं उमा अतीव आनन्दित हुईं। तब अत्यन्त व्याकुल हुए हिमाचल नारदजी से बोले-हे नारदजी! अब इसके लिए क्या उपाय किया जाए? नारदजी ने उत्तर दिया कि हे हिमाचलजी! इसे रेखा फल तो अवश्य मिलेगा किन्तु ऐसा होने पर भी यह सुखपूर्वक रहे इसके लिए उपाय कहता हूँ। जितने भी मैंने इसके पति के लक्षण कहे हैं वे सब रुद्र में दिखाई देते हैं किन्तु भगवान् रुद्र में यह अशुभ लक्षण भी शुभ समझे जाते हैं। आप अपनी पुत्री का उन्हीं के साथ विवाह कर दो। किन्तु एक कठिनाई है कि रुद्र भगवान् श्रीपार्वती पर किसी प्रकार प्रसन्न हो जायें। यह भी तभी होगा जब कि स्वयं श्रीपार्वतीजी तप द्वारा उन्हें प्रसन्न करने की कोशिश करें। तभी यह रुद्र-पत्नी होंगी। इस प्रकार दोनों पति-पत्नी को कहकर तुम वहाँ से चले गये।

-शेष अगले अंक में -क्रमश:

माधव पाण्डेय निर्मल

तीसरा अध्याय

इसीलिए जो कर्म करोगे, बन जायेगा एक प्रमाण।
उसका ही अनुसरण करेंगे अन्य लोग लेकर संज्ञान।।
कहा कृष्ण ने, मुझको देखो, कर्मलीन मैं रहता हूँ।
स्वयं पूर्ण हूँ, मैं त्रिलोक का पालन-पोषण करता हूँ।।

कुछ भी ऐसा नहीं जगत में जिसे मुझे पाना हो।
कुछ कर्त्तव्य नहीं ऐसा जिसको भी मुझे निभाना हो।।
यदि मैं निष्क्रिय हो जाऊँ तो रूक जाये जगती के काम।
और सभी अनुकरण करेंगे लेकर के मेरा ही नाम।।

ऐसा होने से विनष्ट हो जायेगा सारा संसार।
बिना कर्म के नष्ट-भ्रष्ट हो जाये जगती का व्यापार।।
इसीलिए मैं कर्मशील हूँ, किन्तु रहूँ निर्लिप्त सदा।
नहीं कामना कुछ भी मेरी, हर हालत में तृप्त सदा।।

यदि मैं कर्म नहीं करता तो नष्ट-भ्रष्ट होगा संसार।
मेरी निष्क्रियता बन जाये संकर करने सा व्यवहार।।
अज्ञानी आसक्त भाव से जिस प्रकार से कर्म करें।
अनासक्त होकर ज्ञानीजन धर्मयुक्त स्वकर्म करें।।

परमात्मा में स्थित ज्ञानी अज्ञानी को राह दिखायें।
नहीं उन्हें वे भ्रम में डालें या अश्रद्धा भाव जगायें।।
यद्यपि त्रिगुणमयी प्रकृति ही सभी कर्म करवाती है।
फिर भी हन्ता बुद्धि मनुज की कर्त्ता उसे बताती है।।

त्रिगुणमयी है प्रकृति, तीन गुण ही तो बरत रहे हैं।
इस यथार्थ को वेद-शास्त्र ऋषियों ने खूब कहे हैं।।
गुण ही गुण में बरत रहे हैं भाव-वृत्ति या हो व्यवहार।
इनका ही सब खेल समझ लो, इनसे परिचालित संसार।।

सात्विक, राजस, तमस, वृत्तियाँ ही गुण हैं कुदरत के।
कोई नहीं जगत में जो इनसे रहता हो बचके।।
इनके अन्दर चलते रहता आपस में संघर्ष सदा।
विजय-पराजय लीला हरदम, लोप और उत्कर्ष सदा।।

अहंकारवश अज्ञानी सोचे, वह ही सब करता है।
इस भ्रम को मन में पाले वह जीता है, मरता है।।
तत्वरूप में गुण-कर्मो को जिसने समझ लिया है।
दिव्यदृष्टि वाला ज्ञानी वह अमृत घूँट पिया है।।

-क्रमश:

सुभाषचन्द्र बोस

साभार

जन्म : 23 जनवरी 1897 कटक, बंगाल प्रेसीडेंसी का ओड़िसा डिवीजन, ब्रिटिश, मृत्यु-18 अगस्त 19451, राष्ट्रीयता-भारतीय शिक्षा-बी. ए. (आनर्स), विद्यालय कलकत्ता विश्वविद्यालय, प्रसिद्धि कारणभारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी सेनानी, उपाधि, अध्यक्ष-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1938), सुप्रीम कमाण्डर आजाद हिन्द फौज, राजनीतिक पार्टी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 1921-1940,फॉरवर्ड ब्लॉक 1939-1940

धर्म हिन्दू, जीवन साथी-एमिली शेंकल (1937 में विवाह किन्तु जनता को 1993 में पता चला), संतान-अनिता बोस फाफ, रिश्तेदार-शरतचन्द्र बोस भाई, शिशिर कुमार बोस-भतीजा, सुभाष चन्द्र बोस (बांग्ला) उच्चारण सुभाष चन्द्रो बोशु, जन्मः 23 जनवरी 1897, मृत्यु 18 अगस्त 1945 जो नेता जी के नाम से भी जाने जाते हैं, भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी नेता थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान, अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिये, उन्होंने जापान के सहयोग से आजाद हिन्द फौज का गठन किया था। उनके द्वारा दिया गया जय हिन्द का नारा भारत का राष्ट्रीय नारा बन गया है। 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हे आजादी दूंगा' का नारा भी उनका उस समय अत्यधिक प्रचलन में आया।

कुछ इतिहासकारों का मानना है कि जब नेता जी ने जापान और जर्मनी से मदद लेने की कोशिश की थी तो ब्रिटिश सरकार ने अपने गुप्तचरों को 1941 में उन्हें खत्म करने का आदेश दिया था।

नेता जी ने 5 जुलाई 1943 को सिंगापुर के टाउन हॉल के सामने 'सुप्रीम कमाण्डर' के रूप में सेना को सम्बोधित करते हुए 'दिल्ली चलो! का नारा दिया और जापानी सेना के साथ मिलकर ब्रिटिश व कामनवेल्थ सेना से बर्मा सहित इम्फाल और कोहिमा में एक साथ जमकर मोर्चा लिया।

नेता जी ने 5 जुलाई 1943 को सिंगापुर के टाउन हॉल के सामने 'सुप्रीम कमाण्डर' के रूप में सेना को सम्बोधित करते हुए 'दिल्ली चलो! का नारा दिया और जापानी सेना के साथ मिलकर ब्रिटिश व कामनवेल्थ सेना से बर्मा सहित इम्फाल और कोहिमा में एक साथ जमकर मोर्चा लिया।

21 अक्टूबर 1943 को सुभाष बोस ने आजाद हिन्द फौज के सर्वोच्च सेनापति की हैसियत से स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार बनायी जिसे जर्मनी, जापान, फिलीपींस, कोरिया, चीन, इटली, मान्चुको और आयरलैंड ने मान्यता दी। जापान ने अंडमान व निकोबार द्वीप इस अस्थायी सरकार को दे दिये। सुभाष उन द्वीपों में गये और उनका नया नामकरण किया।

1944 को आजाद हिन्द फौज ने अंग्रेजों पर दोबारा आक्रमण किया और कुछ भारतीय प्रदेशों को अंग्रेजों से मुक्त भी करा लिया। कोहिमा का युद्ध 4 अप्रैल 1944 से 22 जून 1944 तक लड़ा गया एक भयंकर युद्ध था। इस युद्ध में जापानी सेना को पीछे हटना पड़ा था और यही एक महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ।

6 जुलाई 1944 को उन्होंने रंगून रेडियो स्टेशन से महात्मा गांधी के नाम एक प्रसारण जारी किया जिसमें उन्होंने इस निर्णायक युद्ध में विजय के लिये उनका आशीर्वाद और शुभकामनायें माँगीं।

नेताजी की मृत्यु को लेकर आज भी विवाद है। जहाँ जापान में प्रतिवर्ष 18 अगस्त को उनका जन्म दिन धूमधाम से मनाया जाता है वहीं भारत में रहने वाले उनके परिवार के लोगों का आज भी यह मानना है कि सुभाष की मौत 1945 में नहीं हुई। वे उसके बाद रूस में नजरबन्द थे। यदि ऐसा नहीं है तो भारत सरकार ने उनकी मृत्यु से सम्बंधित दस्तावेज अब तक सार्वजनिक क्यों नहीं किये। ❑

सूत्र साहित्य का संक्षिप्त परिचय

(गतांक से आगे....)

❑ डॉ. देवेन्द्र गुप्ता

ब्रह्माचर्याश्रम

इस आश्रम में व्यक्ति को अनेक प्रकार के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों को पूरा करना पड़ता था। इसमें स्वधर्म का पालन करते हुए जीविकोपार्जन करना, शास्त्रोक्त विधि से पत्नी ग्रहण करना, अपनी पत्नी में ही अनुरक्त रहना अर्थात् उसी से सम्बंध रखना, उसी से संतान उत्पन्न करना, अतिथियों का सत्कार करना, मित्रों, पड़ोसियों तथा संबंधियों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा करना, दुखी, रोगी, निर्धन, विद्याध्ययनरत व्यक्तियों की सहायता करना, वेदों का अध्ययन करना, ऋणों से उऋण होना, यज्ञ करना, दान देना, श्राद्धकर्म, नित्य एवं नैमत्तिक कर्मों को करना तथा संयमित जीवन व्यतीत करना आदि उसके प्रमुख कर्त्तव्य थे। आपस्तम्ब के अनुसार इस आश्रम में पति-पत्नी दोनों मिलकर गृहस्थाश्रम के सभी कर्मों को एक साथ सम्पादि करते थे। आपस्तम्ब के अनुसार इस आश्रम में पति-पत्नी को केवल दो समय प्रात:और सायं भोजन करना चाहिए। तृप्तिपर्यन्त अन्न का भोजन नहीं करना चाहिए। पर्वों पर पति और पत्नि दोनों को उपवास रखना चाहिए। उपवास में केवल एक समय ही भोजन करना चाहिए। उस रात्रि में दोनों को भूमि पर शयन करना चाहिए। साथ ही मैथुन से दूर रहना चाहिए।

इसमें स्वधर्म का पालन करते हुए जीविकोपार्जन करना, शास्त्रोक्त विधि से पत्नी ग्रहण करना, अपनी पत्नी में ही अनुरक्त रहना अर्थात् उसी से सम्बंध रखना, उसी से संतान उत्पन्न करना, अतिथियों का सत्कार करना, मित्रों, पड़ोसियों तथा संबंधियों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा करना, दुखी, रोगी, निर्धन, विद्याध्ययनरत व्यक्तियों की सहायता करना,

अतिथि सत्कार गृहस्थ का अनिवार्य कर्त्तव्य माना जाता था। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही आतिथ्य का विशेष महत्व रहा है। अतिथि को देवता के समान माना जाता था। अथर्ववेद के अनुसार गृहस्थ को चाहिए कि वह अतिथि को खिलाने के बाद स्वयं खाये अन्यथा उसके सब पुण्य अवश्यमेव समाप्त हो जाते हैं। अतिथि चाहे किसी भी वर्ण अथवा जाति का हो, परिचित हो अथवा अपरिचित, सबको घर में ठहराना, उनका समुचित आदर-सत्कार करना तथा उनको भोजन कराना गृहस्थ का परम धर्म माना जाता था। आपस्तम्ब तथा बौधायन ने तो चण्डाल

अतिथि तक के स्वागत की बात कही है। लेकिन इस सम्बंध में वर्ण क्रम का ध्यान रखा जाता था। वसिष्ठ के अनुसार योग्यतम् व्यक्ति का सम्मान सबसे पहले होना चाहिए। गौतम के अनुसार यदि अतिथि श्रोत्रिय ब्राह्मण हो तो पैर धोने के लिए जल, अर्ध्य (फल, ताम्बुल आदि) और विशेष अन्न (पकवान) देकर विशेष रूप से स्वागत करना चाहिए और यदि विशेष भोजन न करा सके तो घर में नित्य जो भोजन बनता हो उसे उसे विशेष स्वादयुक्त बनाकर ब्राह्मण को खिलाना चाहिए। यदि अतिथि विद्याहीन होने पर भी सदाचारी हो तो उसे मध्यम कोटि का भोजन कराना चाहिए। लेकिन जो अतिथि विद्या, वृत्ति आदि में अपने समान हो या अपने से श्रेष्ठ हो, उन दोनों प्रकार के अतिथियों को अपने समान शय्या, आसन और घर में निवास स्थान देना चाहिए, उसके पीछे-पीछे चलना चाहिए और उनके समीप में उपस्थित रहना चाहिए। अपने से कुछ ही हीन अतिथि के आने पर भी उसे समान ही शय्या आदि देनी चाहिए। साथ ही आतिथ्य के समय आये हुए शूद्रों को भी भोजन आदि देकर उनका स्वागत करना चाहिए। आपस्तम्ब के अनुसार गृहस्थ को अतिथियों को भोजन कराने के बाद ही स्वयं भोजन करना चाहिए। लेकिन जो गृहस्थ अतिथि के आने से पूर्व ही भोजन कर लेता है तो उसकी सम्पत्ति, सन्तान, पशु एवं पुण्य नष्ट हो जाते हैं। लेकिन विष्णु के अनुसार नवविवाहिता पुत्रियों एवं बहिनों, अविवाहित कन्याओं, रोगियों एवं गर्भवती नारियों को अतिथियों से पूर्व ही खिला देना चाहिए। किन्तु गौतम ने उन्हें अतिथि के समय ही खिलाने को कहा है। आपस्तम्ब के अनुसार उसे घर में रखे हुए दूध तथा रस वाले पदार्थों को पूरी तरह समाप्त नहीं करना चाहिए। जिससे कि अतिथि के लिए कुछ शेष अवश्य रह जाए। उनके अनुसार यदि वेद न जानने वाला ब्राह्मण,

वसिष्ठ के अनुसार योग्यतम् व्यक्ति का सम्मान सबसे पहले होना चाहिए। गौतम के अनुसार यदि अतिथि श्रोत्रिय ब्राह्मण हो तो पैर धोने के लिए जल, अर्ध्य (फल, ताम्बुल आदि) और विशेष अन्न (पकवान) देकर विशेष रूप से स्वागत करना चाहिए और यदि विशेष भोजन न करा सके तो घर में नित्य जो भोजन बनता हो उसे उसे विशेष स्वादयुक्त बनाकर ब्राह्मण को खिलाना चाहिए।

क्षत्रिय या वैश्य घर आ गए तो उसे आसन, जल और भोजन देना चाहिए। किन्तु उठकर आवभगत नहीं करनी चाहिए। किन्तु यदि शूद्र अतिथि बनकर ब्राह्मण के घर आ जाए तो ब्राह्मण को उससे काम लेकर उसे भोजन देना चाहिए। किन्तु यदि उसके पास कुछ भी न हो तो उसे अपना दास भेजकर राजकुल से सामग्री मांगनी चाहिए। बौधायन गृह्यसूत्र के अनुसार यदि गृहस्थ के पास और कुछ सामग्री न हो तो उसे जल, निवास, घास एवं मीठी बोली से ही सम्मान करना चाहिए। बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार गृहस्थी को चाहिए कि वह सबसे पहले अतिथि को भोजन कराए। फिर गर्भिणी स्त्रियों को, उसके बाद बालकों को, वृद्धों को, दुखी व्यक्तियों को और विशेष रूप से रोगी को भोजन कराए। किन्तु जो व्यक्ति इन व्यक्तियों को भोजन कराए बिना स्वयं भोजन करता है वह यह नहीं जानता कि स्वयं उसी का भक्षण होता है, वह खाता नहीं है अपितु खाया जाता है। उसे पितरों, देवताओं, सेवकों, माता-पिता और गुरूओं को खिलाने के पश्चात् अवशिष्ट भोजन मौन होकर करना चाहिए। ऐसा धर्म में विधान है। आपस्तम्ब तथा वशिष्ठ के अनुसार अतिथि के लौटने पर यदि उसके साथ उस समय तक चलना चाहिए जब तक कि वह उसे वापस लौटने के लिए नहीं कहे। लेकिन यदि अतिथि उसे लौटने के लिए कहने का ध्यान न रखे तो गाँव की सीमा तक पहुँचकर लौटना चाहिए। वसिष्ठ के अनुसार सायंकाल घर आये हुए अतिथि को वापस नहीं जाने देना चाहिए और न ही उसे बिना भोजन कराए आराम करने देना चाहिए। उनके अनुसार यदि कोई ब्राह्मण किसी गृहस्थी के यहाँ अतिथि के रूप में आश्रय लेता है और वह गृहस्थ उसका भोजन आदि के द्वारा सत्कार नहीं करता है तो वह ब्राह्मण अतिथि वापस जाते समय उस गृहस्थी के सभी धार्मिक पुण्यों को अपने साथ ले जाता

है। शांखयान गृह्यसूत्र के अनुसार खेत में गिरा हुआ अन्न इकट्ठा करके जीविका चलाने वाले एवं अग्निहोत्र करने वाले गृहस्थ के घर में यदि ब्राह्मण बिना आतिथ्य सत्कार पाये रह जाता है तो वह उस गृहस्थ के सारे पुण्यों को प्राप्त कर लेता है। आपस्तम्ब के अनुसार व्यक्ति अतिथि सत्कार के द्वारा स्वर्ग और विपत्ति से मुक्ति प्राप्त करता है। बौधायन के अनुसार यदि कोई व्यक्ति बहुत से अतिथियों का सत्कार करने में असमर्थ है तो उसे क्रम से श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न व्यक्ति का अथवा प्रथम आने वाले व्यक्ति का या श्रोत्रिय का सत्कार करना चाहिए। विष्णु के अनुसार अतिथि चाहे प्रात:काल आये अथवा सायंकाल उसे बैठने के लिए आसन देना चाहिए, पीने के लिए पानी देना चाहिए, अपनी क्षमता के अनुसार भोजन देना चाहिए और उसका सम्मान करना चाहिए। उनके अनुसार जो व्यक्ति घर आये हुए अतिथि का आश्रय, शय्या, पैरों के लिए मलहम तथा दीपक के द्वारा सम्मान करता है, वह गोदान के समान फल प्राप्त करता है। महाभारत के अनुसार अतिथि के घर आने पर आतिथ्यकर्ता को उसको प्रसन्न दृष्टि से देखना चाहिए, उसकी सेवा में मन लगाना चाहिए, उससे मीठी बोली बोलनी चाहिए, उस पर व्यक्तिगत ध्यान देना चाहिए और जब वह जाने लगे तो उसके साथ कुछ दूर तक जाना चाहिए। इस यज्ञ में यही पांच प्रकार की दक्षिणा है।

ब्रह्मचारी को भिक्षा देना भी गृहस्थ का परम कर्त्तव्य माना जाता था। आपस्तम्ब के अनुसार यदि गृहस्थ ब्रह्मचारी को भिक्षा नहीं देता है तो वह ब्रह्मचारी उसके दान, पुण्य, प्रजा, पशु, कुल, विद्या और अन्न आदि सभी कुछ छीन लेता है। संन्यासियों को भिक्षा देना भी उसका कर्त्तव्य माना जाता था। विष्णु के अनुसार उसे नियमित रूप से संन्यासियों को भिक्षा देनी चाहिए और गृहस्थी आदर और

ब्रह्मचारी को भिक्षा देना भी गृहस्थ का परम कर्त्तव्य माना जाता था। आपस्तम्ब के अनुसार यदि गृहस्थ ब्रह्मचारी को भिक्षा नहीं देता है तो वह ब्रह्मचारी उसके दान, पुण्य, प्रजा, पशु, कुल, विद्या और अन्न आदि सभी कुछ छीन लेता है। संन्यासियों को भिक्षा देना भी उसका कर्त्तव्य माना जाता था।

सम्मान के साथ भिक्षा देता है वह गोदान के समान फल प्राप्त करता है। लेकिन यदि भिक्षा देने के लिए कोई संन्यासी न मिले तो उसे गाय को ग्रास देना चाहिए। यदि गाय भी न मिले तो उसे वह भाग अग्नि में डालना चाहिए। यदि घर में भोजन न हो तो उसे भिक्षु को वापस नहीं लौटाना चाहिए, अपितु अपने हिस्से का भोजन उसे देना चाहिए। साथ ही उसका कथन है कि ब्रह्मचारी, यति और भिक्षु अपने जीव के अस्तित्व के लिए गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर करते है। अत:जब वे भिक्षा के लिए पहुँचे तो गृहस्थी को कभी भी उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

दान देना भी उसका कर्त्तव्य माना जाता था। गौतम के अनुसार वेद के अध्ययन के उपरान्त गुरु के लिए, विवाह के लिए, रोगी की औषधि के लिए, हीन वृत्ति वाले के लिए, यज्ञ करने वाले के लिए, अध्ययन करने वाले के लिए मार्ग पर चलने वाले के लिए और विश्वजित यज्ञ करने वाले के लिए इनके माँगने पर अवश्य ही बर्हिवेदी दान देना चाहिए। उपर्युक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त भी माँगने वाले व्यक्तियों को पकाया हुआ अन्न देना चाहिए। लेकिन अधार्मिक कार्य के लिए कदापि दान नहीं देना चाहिए। उनके अनुसार अब्राह्मण द्वारा ब्राह्मण, श्रोत्रिय और वेदविद्या में पारंगत व्यक्ति को दान देने पर क्रमश: समान, दुगना, सौगुना और अनन्त फल की प्राप्ति होती है। बौधायन के अनुसार सदाचारी ब्राह्मण, वेदों के ज्ञान और अनुष्ठान से युक्त श्रोत्रिय, वेदविद्या में पारंगत पुरुष आदि यज्ञवेदि से भिन्न स्थान पर गुरु को दक्षिणार्थ देने के लिए, विवाह के लिए, औषधि के लिए, जीवन वृत्ति विहीन होने पर भर-पोषण के लिए यज्ञ करने के लिए, अध्ययन के

प्रतिदिन यज्ञ करना भी उसका अनिवार्य कर्त्तव्य माना जाता था। विष्णु के अनुसार उसे वैवाहिक अग्नि में पाकयज्ञों और प्रतिदिन प्रातः और सायं अग्निहोत्र तथा वैश्वदेव करना चाहिए। लेकिन यदि वह अग्निहोत्र न कर सकेतो देवताओं को आहुति देनी चाहिए।

लिए, यात्रा के लिए या विश्वरचित यज्ञ करने के लिए धन की याचना करें तो उन्हें यथाशक्ति धन प्रदान करना चाहिए।

प्रतिदिन यज्ञ करना भी उसका अनिवार्य कर्त्तव्य माना जाता था। विष्णु के अनुसार उसे वैवाहिक अग्नि में पाकयज्ञों और प्रतिदिन प्रातः और सायं अग्निहोत्र तथा वैश्वदेव करना चाहिए। लेकिन यदि वह अग्निहोत्र न कर सके तो देवताओं को आहुति देनी चाहिए। वैखानस के अनुसार उसे स्नान करके सपत्नी गृहाग्नि में गृहकर्म औरश्रौताग्नि में श्रौत कर्म का सम्पादन करना चाहिए। साथ ही गृहस्थाश्रमी को दो यज्ञोपवीत, वैष्णव दण्ड और कमण्डल धारण करना चाहिए।

अपने आश्रितों का पालन-पोषण करना भी उसका परम कर्त्तव्य माना जाता था। गौतम के अनुसार अतिथि,बालक, रोगी, गर्भवती स्त्री, घर में रहने वाली पुत्रियों और बहिनों, वृद्धों तथा सेवकों को अपने से पहले भोजन कराना उसका कर्त्तव्य माना जाता था। आपस्तम्ब के अनुसार भोजन का विभाग इस प्रकार करना चाहिए कि जो दास तथा भृत्य आदि प्रतिदिन भोजन करते हों वे वंचित न रह जाएँ। उनके अनुसार भले ही स्वयं के पत्नी और पुत्र के भोजन में कमी करनी पड़े किन्तु सेवा-कर्म करने वाले दास आदि के भोजन में विघ्न नहीं होने देना चाहिए। बौधायन के अनुसार जो पितरों, देवताओं, सेवकों, अतिथियों तथा मित्रों को बिना दिये ही बने हुए अन्न को खा लेता है तो वह मूर्खतावश विष का ही भक्षण करता है। किन्तु जो अग्निहोत्र हवन कर, वैश्वदेव कर, पूज्यजनों, अतिथियों और सेवकों के भोजन करने के बाद बचे हुए अन्न को सन्तुष्ट होकर पवित्रता से तथा श्रद्धा रखते हुए खाता है तो वह अमृत का भक्षण करता है। उनके अनुसार गृहस्थी को केवल 32 ग्रास भोजन करना चाहिए। महाभारत के अनुसार अपने आश्रितों को खिलाने के बाद जो भोजन शेष बचा रहता है, वह अमृत तुल्य होता है और उसे खाने वाला सत्फल को प्राप्त करता है। वह किसी भी अवस्था में अपने माता-पिता का अपमान नहीं करता। गुरुजनों से किसी प्रकार की चपलता न करना और उनकी सेवा करना भी उसका कर्त्तव्य माना जाता था।

ऋतुकाल में अपनी पत्नी के साथ सम्भोग करना भी गृहस्थ का कर्त्तव्य माना जाता था। लेकिन निषिद्ध दिनों में तथा दिन में सम्भोग करना वर्जित माना जाता था। आपस्तम्ब के अनुसार संभोग के समय 'स्त्रीवास' ही पहनना चाहिए। यह इस अवसर पर पहनने का एक विशिष्ट वस्त्र होता था। जिसका प्रयोग किसी भी स्थिति में धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के समय नहीं किया जाता था। उनके अनुसार केवल संभोग के समय ही पति -पत्नी को शय्या पर एक साथ लेटना चाहिए और उसके बाद अलग हो जाना चाहिए। उसके बाद वे दोनों स्नान करें अथवा जहाँ कहीं वीर्य या रज लग गया हो उसे मिट्टी या जल से स्वच्छ करके आचमन करें तथा अपने शरीर पर जल छिड़कें। वैखानस के अनुसार गृहस्थी को परस्त्री के साथ गमन नहीं करना चाहिए. क्योंकि परस्त्री के साथ गमन करने से आयु, श्री एवं ब्रह्मवर्चस नष्ट हो जाता है। साथ ही उसे अपनी पत्नी के साथ भोजन नहीं करना चाहिए और न ही उसको भोजन करती हुई, जम्भाई लेती हुई तथा नग्न अवस्था में देखना चाहिए।

- **क्रमशः**

।।हरि ओउम् शान्ति।।

सुख, सम्पति, स्वरुप, संयम, सादगी, सफलता, साधना, संस्कार, स्वास्थ्य, सम्मान, शान्ति एवं समृध्दि की मंगलकामनाओं के साथ शाश्वत परिवार की तरफ से आप एवं आप के परिवार को नये साल 2017 की हार्दिक शुभकामनाएं!

वशिष्ठ जी का उपदेश

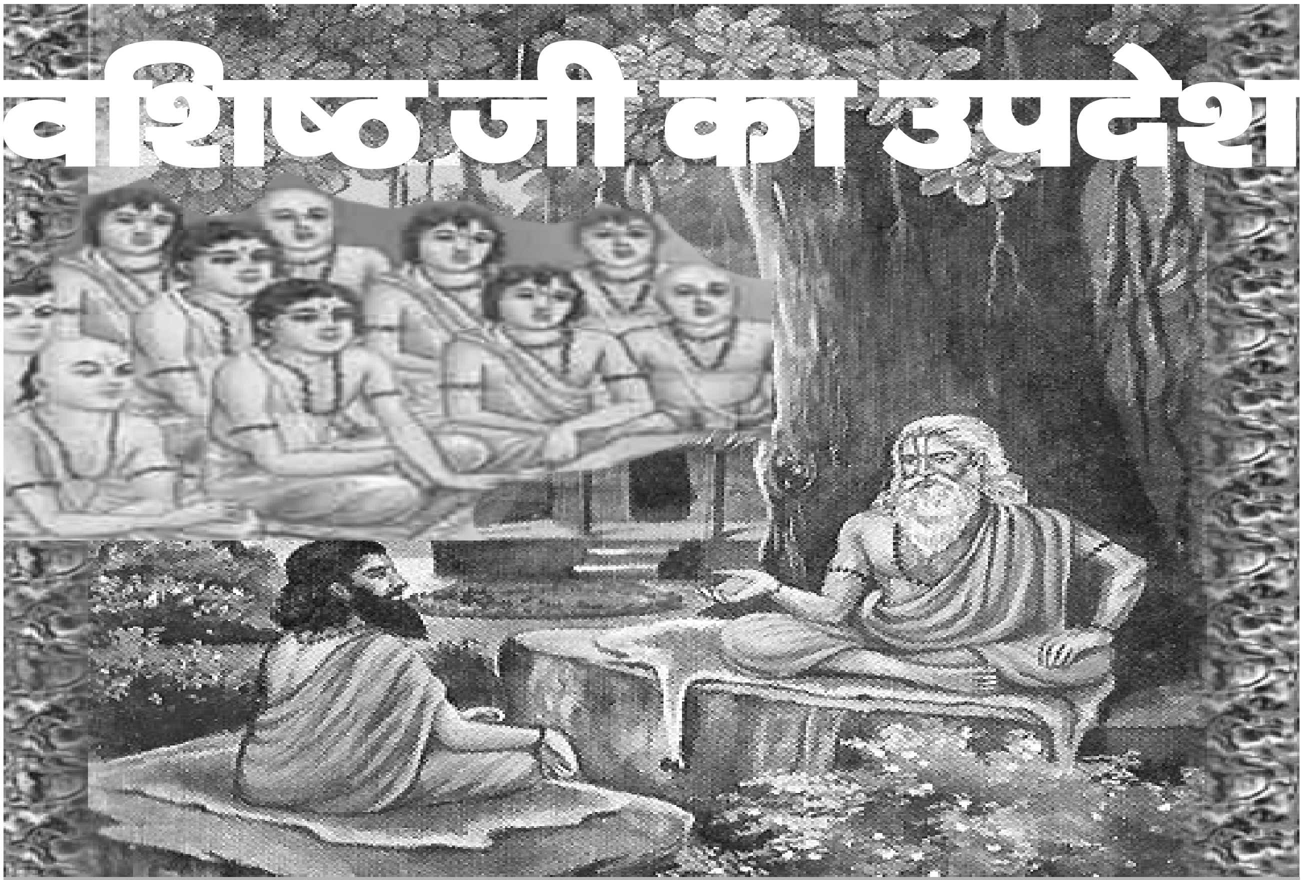

महामंडलेश्वर डॉ. स्वामी उमाकान्तानन्द जी महाराज

गतांक से आगे

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिले न भेद।
गुरु बिन संशय ना मिटे, जय जय जय गुरुदेव।।

श्रीराम सबके सद्‌गुरु हैं। गुरु और सद्‌गुरु में अन्तर है। शब्द द्वारा ज्ञान का उपदेश जो करता है वह गुरु है। आचरण से- क्रिया द्वारा जो ज्ञान का उपदेश करता है, वह सद्‌गुरु है। इस संसार में शब्द से ज्ञान का उपदेश करने वाले बहुत हैं परन्तु स्वयं के आचरण द्वारा उपदेश करने वाले विरले हैं। शब्द से उपदेश करने वालों की संसार में बुराई नहीं। बहुत लोग पुस्तक पढ़कर ज्ञान-अर्जन करते हैं, दूसरों को उपदेश करते हैं। परन्तु उनके उपदेश का कोई असर होता नहीं। असर उनके ही उपदेश का होता है, जिन्होंने ज्ञान को जीवन में उतार लिया है, जिन्हें शब्दार्थ वाला ज्ञान नहीं परन्तु क्रिया-अर्थवाला ज्ञान है। जो ज्ञान जीवन में उतरता नहीं, वह बहुत काम में आता नहीं। शब्दज्ञान से कदाचित् पैसा मिलगा, परन्तु अन्दर की शान्ति मिलेगी नहीं। शब्द-ज्ञान से अन्दर की विकार-वासना का नाश होता नहीं।

रामायण में लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजी बहुत कम बोलते हैं और एकवचनी हैं। रामजी बहुत व्याख्यान नहीं करते, बहुत बोलना रामजी को अच्छा नहीं लगता। रामजी का उपदेश शब्दात्मक नहीं, क्रियात्मक है। रामजी की प्रत्येक क्रिया, ज्ञान-भक्ति से परिपूर्ण है। रामजी के चलने में भी ज्ञान है। रामजी जगत में विचरते हैं, जगत को देखते हैं, जगत के साथ व्यवहार करते हैं। इनका व्यवहार, ज्ञान और भक्ति से भरा हुआ है।

साधारण मनुष्य ऐसा समझता है कि व्यवहार और भक्ति अलग-अलग है, व्यवहार का काम करते हुए भक्ति नहीं हो सकती। ज्ञानी महापुरुषों के प्रत्येक व्यवहार, भक्तिमय होते हैं। ज्ञानी महापुरुष ऐसा नहीं मानते कि अमुक समय भक्ति का है, और अमुक समय व्यवहार का है। वे ऐसा मानते हैं कि भक्ति निरन्तर की जाने योग्य है। उठते, बैठते, चलते, रात्रि को चारपाई पर सोते-सोते भी भक्ति

रामायण में लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजी बहुत कम बोलते हैं और एकवचनी हैं। रामजी बहुत व्याख्यान नहीं करते, बहुत बोलना रामजी को अच्छा नहीं लगता। रामजी का उपदेश शब्दात्मक नहीं, क्रियात्मक है। रामजी की प्रत्येक क्रिया, ज्ञान-भक्ति से परिपूर्ण है। रामजी के चलने में भी ज्ञान है।

पिता नहीं और मैं तुम्हारा पुत्र नहीं। जय श्रीकृष्ण! जा रहा हूँ।

पिता-पुत्र का सम्बन्ध छोटा है। जीव-ईश्वर का सम्बन्ध सच्चा है। जो परमात्मा के स्वरूप का सतत अनुभव करता है, उसी का व्यवहार छूट सकता है। जब तक मुट्ठीभर चने की भी आवश्यकता है, जब तक वस्त्र की आवश्यकता हे, तब तक व्यवहार पीछे-पीछे ही है, ऐसा समझना। व्यवहार करो, व्यवहार छोड़ना नहीं। यदि मैं तुमसे व्यवहार छोड़ने की कहूँ, तो तुम कहाँ छोड़ने वाले हो ? व्यवहार छूटता नहीं। व्यवहार तो सभी को करना पड़ता है। जब तक किंचित् भी अपेक्षा है, तब तक व्यवहार छूटता नहीं। उसे छोड़ने की आवश्यकता भी नहीं।

परमात्मा को साथ रखने का अर्थ क्या प्रभु की मूर्ति को हाथ में लेकर फिरना है ? परमात्मा को मन से साथ रखो। मार्ग चलते हुए भी भक्ति करनी है। जो मार्ग में भक्ति करता नहीं, वह आँख और मन को बिगाड़कर ही घर आता है। परमात्मा को साथ रखकर, परमात्मा के अनुसंधान में रहकर व्यवहार करो।

करनी है, जीवन के अन्तिम श्वास तक भक्ति करनी है। रात्रि को चारपाई पर जो भक्ति नहीं करता वह काम की मार खाता है, वह कामान्ध मोहान्ध बनता है। वह पाप करता है।

चारपाई पर पड़ने के बाद परमात्मा का नाम-जप करते-करते सो जाओ। चारपाई पर सोने के बाद मनुष्य धीरे-धीरे जगत भूलता है। जगत की पूर्ण विस्मृति होने के बाद ही निद्रा आती है। निद्रा का आगमन हो, उस क्षण तक परमात्मा का नामस्मरण करो। श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम बोलते-बोलते निद्रा आ जावे और निद्रा से जगो कि तुरन्त हो प्रभु के नाम का जप प्रारम्भ कर दो तो निद्रा भी भक्ति बन जाएगी।

वैष्णव वह है जो प्रत्येक व्यवहार में परमात्मा को साथ रखता है। वैष्णव बाहर जाते समय ठाकुरजी का वन्दन करता है और कहता है कि इस समय मुझे बाहर जाना है परन्तु तुम्हारे दर्शन बिना, स्मरण बिना मैं रह सकता नहीं। मैंने सुना है कि आपको अनेकरूप धारण करने आते हैं। आप ऐसी कृपा करो कि एक स्वरूप में आप घर में विराजो और एक स्वरूप से मेरे साथ चलो। इस प्रकार मार्ग में भी परमात्मा को साथ ही रखो।

परमात्मा को साथ रखने का अर्थ क्या प्रभु की मूर्ति को हाथ में लेकर फिरना है? परमात्मा को मन से साथ रखो। मार्ग चलते हुए भी भक्ति करनी है। जो मार्ग में भक्ति करता नहीं, वह आँख और मन को बिगाड़कर ही घर आता है। परमात्मा को साथ रखकर, परमात्मा के अनुसंधान में रहकर व्यवहार करो। ईश्वर से विभक्त होकर व्यवहार मत करो।

व्यवहार तो करना ही पड़ता है। व्यवहार छोड़ने से छूटता नहीं। व्यवहार गृहस्थ को ही करना पड़े, ऐसा नहीं। साधु-संन्यासी को भी व्यवहार करना पड़ता है। इनको लंगोटी की तो आवश्यकता पड़ती ही है। व्यवहार उसका छूटता है, जिसको ईश्वर के अतिरिक्त कुछ दीखता नहीं। शुकदेवजी महाराज को परमात्मा का ऐसा अनुभव हो चुका था कि आत्मस्वरूप में परमात्मा के दर्शनों के आनन्द में मस्त होकर विचरते थे। पिता को कह दिया कि तुम मेरे

जब तक शरीर है, तब तक मुट्ठीभर दानों की आवश्यकता रहेगी ही और तब तक व्यवहार-धंधा भी करना ही पड़ेगा। इसलिए व्यवहार अवश्य करो, परन्तु इसमें विवेक रखो।

श्रीराम में ईश्वर में मन रखकर व्यवहार करो। पनिहारिनें पानी के घड़े भरकर जब मार्ग चलती है, उस समय वे एक दूसरी के साथ वार्तालाप करती हैं। परन्तु बातचीत में भी उनका ध्यान निरन्तर माथे के घड़े पर ही होता है। इसी प्रकार संसार का व्यवहार, ईश्वर का सतत स्मरण रखकर करो। जगत के पदार्थों में आसक्ति रखो नहीं, व्यवहार के साथ एक बनो नहीं।

व्यवहार करना पाप नहीं, परन्तु व्यवहार में भगवान को भूल जाना पाप है। व्यवहार करते-करते परमार्थ को याद रखो, लक्ष्य को भूलो नहीं। लक्ष्य है परमात्मा के चरणों में पहुँचना परन्तु इस जगत में कोई केवल स्त्री

के लिए जीता है, कोई केवल धन के लिए जीता है, कोई पुत्र के लिए जीता है। परमात्मा के लिए कोई जीता नहीं। मानव लक्ष्य भूलता नहीं। लक्ष्य को ध्यान में रखकर किया हुआ व्यवहार ही भक्ति है। व्यवहार-शुद्धि हो तो भक्ति आती है परन्तु लक्ष्य को भूलकर व्यवहार करते हो, तो वह बंधनरूप है। लक्ष्य को भूलोगे तो चौरासी लाख के चक्कर में भटक जाओगे। व्यवहार करते हुए आँख श्रीराम में रखोगे तो, व्यवहार भक्ति बन जाएगा।

प्रत्येक कार्य परमात्मा की आज्ञा समझकर करो। भक्ति और कर्म में अन्तर नहीं। श्रीराम का स्मरण करते-करते किया हुआ कर्म भक्ति बन जाता है। कर्म में फलेच्छा ही कर्म में कपट है। फल की इच्छा रखे बिना कर्म करोगे तो वह कर्म ही भक्ति है। जो ईश्वर के लिए कर्म करता है, उसका प्रत्येक कर्म भगवान की भक्ति बन जाता है। कर्म करते समय मन को ईश्वर के साथ जोड़कर रखोगे, मैं भगवान के लिए कर्म करता हूँ- ऐसी निष्ठा रखोगे तो तुम्हारी प्रत्येक क्रिया भक्ति बन जाएगी।

तुम किसी के साथ बात करो, उस समय भगवान का स्मरण करते -करते बोलो। व्यवहार को सुखमय बनाना हो, तो ईश्वर को साथ रखकर व्यवहार करो। साधारण मनुष्य व्यवहार करता है, उस समय ऐसा समझता है कि भगवान मन्दिर में बैठा है। मैंने भगवान की सम्पूर्ण सेवा की। मैंने आरती भी उतार दी, भक्ति अब समाप्त हो चुकी। अब भगवान को याद करने की कुछ आवश्यकता नहीं।

भक्ति की समाप्ति करे, वह वैष्णव तो वह है जो भोग की समाप्ति करता है। वैष्णव तो वह है जो भोग में संतोष और भक्ति में लोभ रखता है। भोग भक्ति में अतिशय बाधक है। भोजन में संतोष मानो, परन्तु प्रभु-भजन में किसी दिवस संतोष रखना नहीं। द्रव्य में संतोष मानो, परन्तु साधन में, सत्कर्म में संतोष मानना नहीं। भोग में संतोष मानो, परन्तु भक्ति में संतोष नहीं, जो भक्ति और सत्कर्म में संतोष

कथा-श्रवण करते हो तो अब भोगों की समाप्ति का निश्चय मन से करो। आज पर्यन्त मैंने इन्द्रियों के सभी प्रकार के सुख अनेक बार भोगे हैं। भोग से शान्ति मिली नहीं। मैं अब भोगों की समाप्ति करता हूँ। मुझे अब जीवन के अन्तिम श्वास तक निरन्तर भक्ति करनी है। जीवन ऐसा जिओ कि तुम्हारा प्रत्येक व्यवहार भक्ति बने। परमात्मा को साथ्ज्ञ रखकर व्यवहार करो। निद्रा तक को आचार्यगणों ने समाधि के समान गिना है।

माने, वह भक्तिमार्ग में आगे नहीं बढ़ता। भक्ति में तृप्ति दोष है। साध्य मिलने के बाद भी साधना को चालू ही रखना होता है।

कथा-श्रवण करते हो तो अब भोगों की समाप्ति का निश्चय मन से करो। आज पर्यन्त मैंने इन्द्रियों के सभी प्रकार के सुख अनेक बार भोगे हैं। भोग से शान्ति मिली नहीं। मैं अब भोगों की समाप्ति करता हूँ। मुझे अब जीवन के अन्तिम श्वास तक निरन्तर भक्ति करनी है। जीवन ऐसा जिओ कि तुम्हारा प्रत्येक व्यवहार भक्ति बने। परमात्मा को साथ रखकर व्यवहार करो। निद्रा तक को आचार्यगणों ने समाधि के समान गिना है। भगवान श्रीशंकराचार्य स्वामी ने कहा है।

आत्मा त्वं गिरजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृह पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
संचारस्तु पदोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरा यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्।।

आत्मा ईश्वर है। सन्तजन बुद्धि का ईश्वर के साथ परिणय करते हैं। सन्तों के प्राण परमात्मा के सेवक हैं, शरीर प्रभु का मन्दिर है। निद्रा समाधि है। सन्तजन चलते हैं वही प्रभु की परिक्रमा है- उनका ऐसा भाव होता है कि ठाकुरजी अपनी दाहिनी बाजू में विराजे हैं। भगवान का दर्शन करते-करते मैं परिक्रमा कर रहा हूँ। सन्त बोलते हैं तब भी परमात्मा का अनुसन्धान रखकर बोलते हैं। इसलिए उनका बोलना, बोलना नहीं, परन्तु प्रभु की प्रशंसा है। उनका प्रत्येक कथन परमात्मा की स्तुति है। वे परमात्मा के साथ चारपाई पर सो जाते हैं। परमात्मा के संग जो सो जाता है, उसको कितना आनन्द आता होगा। जो ईश्वर के साथ प्रेम करता है, उसके समस्त कर्म पूजारूप हैं। उसका समस्त व्यवहार ही भक्ति है।

❑

काल से रक्षा करने वाली कालमेघ

वैद्य दीपक

पर्यावरण प्रदूषण आज के संसार की सबसे बड़ी समस्या है। वायु, जल, खाद्यान्न इन दिनों यह तीनों बुरी तरह विषाक्त हो चले हैं। पंचतत्वों में यद्यपि सर्वाधिक रोग शोक और बीमारियाँ वायु प्रदूषण से आती हैं पर प्रकृति ने वृक्षों, वर्षा, यज्ञों आदि के द्वारा वायु दोषों के निरन्तर निराकरण की व्यवस्था की है। पृथ्वी से ऐसे उपजने वाले खाद्यान्न तथा फलों में भी अभी रासायनिक विष पूरी तरह घुला नहीं, पर जल के प्रदूषण निवारण की कोई व्यवस्था न होने के कारण न केवल नदियों, तालाबों, कुओं और ट्यूबवेल का पानी बुरी तरह प्रदूषित हो गया है वरन् वर्षा के जल में भी तेजाब पाया जाने लगा है। पृथ्वी के भीतर सोख लिया जल भी बुरी तरह विषाक्त हो गया है। देश की बावन नदियों के जल को तो गंदे नाले के जल से भी अधिक प्रदूषित घोषित कर दिया गया है इस दृष्टि से जल प्रदूषण से होने वाले दुष्प्रभाव से आज देश का कोई भी स्त्री पुरुष या बालक बच नहीं सकता। लीवर या यकृत का क्षतिग्रस्त होना, दुर्बल पड़ना इसी की देन है। कल तक की 'पीलिया' बीमारी ने आज खतरनाक 'ज्वाइंडिस' का रूप ले लिया है। पहले यह साधारण बीमारी समझी जाती थी। मूली खाने, गन्ने चूसने आदि से इसका इलाज हो जाता था, पर अब तो यह ज्वाइंडिस एक जानलेवा बीमारी बन गयी है। 'कालमेघ' इसकी सबसे उत्तम औषधि है। 'व्याराजाइड' कैप्सूल तथा लिव 52 जैसी औषधियों में कालमेघ का प्रयोग किया जाता है। यह

पंचतत्वों में यद्यपि सर्वाधिक रोग शोक और बीमारियाँ वायु प्रदूषण से आती हैं पर प्रकृति ने वृक्षों, वर्षा, यज्ञों आदि के द्वारा वायु दोषों के निरन्तर निराकरण की व्यवस्था की है। पृथ्वी से ऐसे उपजने वाले खाद्यान्न तथा फलों में भी अभी रासायनिक विष पूरी तरह घुला नहीं, पर जल के प्रदूषण निवारण की कोई व्यवस्था न होने के कारण न केवल नदियों, तालाबों, कुओं और ट्यूबवेल का पानी बुरी तरह प्रदूषित हो गया है वरन् वर्षा के जल में भी तेजाब पाया जाने लगा है।

कफ, पित्त का शमन करने वाली, लीवर को शक्ति प्रदान करने वाली दुर्लभ बूटी है। पेट में जमा मल विकार की सफाई और भूख न लगने की व्याधि का इस कालमेघ से तत्काल निवारण होता है। वैद्यों के परामर्श से शारीरिक स्थिति के अनुरूप इसके साथ अन्य औषधियाँ भी मिश्रित की जा सकती हैं, पर यदि एक-एक चम्मच प्रात: काल शुद्ध जल से कालमेघ का सेवन किया जाये तो न केवल यकृत को ताकतवर बनाया जा सकता है वरन् इसे देखते ही ज्वाइंडिस दूर भागती देखी जा सकती है। कालमेघ को भूनिम्ब करियातु या कल्पनाथ नामों से भी जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे 'एण्ड्रोग्राफिस पैलीकुलेटा' कहते हैं। इसके पत्ते भाला के आकार के होते हैं। पौधा प्राय: 2-3 फुट ऊँचा होता है इसका फूल मई से सितम्बर के बीच आता है। फूल यद्यपि सफेद होता है पर उस पर बैंगनी रंग के छींटे से पड़े होते हैं। फल में रोयें होते

कालमेघ को भूनिम्ब करियातु या कल्पनाथ नामों से भी जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे 'एण्ड्रोग्राफिस पैलीकुलेटा' कहते हैं। इसके पत्ते भाला के आकार के होते हैं। पौधा प्राय: 2-3 फुट ऊँचा होता है इसका फूल मई से सितम्बर के बीच आता है।

हैं। यद्यपि कालमेघ खाने में अत्यधिक कड़वा होता है तथापि इसके गुणों को देखते हुए प्रात: सायं इसकी फंकी आँख मूँद कर ली जा सकती है। सीधे फाँकने में दिक्कत आती हो तो दो चम्मच कालमेघ, दो कप पानी में डालकर उसे उबालकर कर जब पानी एक कप रह जाये तब छान लेना चाहिए और शहद मिलाकर प्रात: सायं आधा कप पी लेना चाहिए। ज्वर के उपरान्त रक्त की अशुद्धि दूर करने तथा मलेरिया के कारण प्लीहा में हुई वृद्धि को भी कालमेघ के सेवन से ठीक किया जा सकता है। जिन्हें इस वृक्ष की पूरी जानकारी हो वही इसे सीधे ग्रहण करें। इसका पांचांग अर्थात् जड़, डालें, पत्ते, फूल और फल सभी एक साथ पीसकर प्रयुक्त किया जाता है। जिन्हें पहचान न हो उन्हें पंसारी से लेना चाहिए। याद रखें, पंसारियों के यहाँ औषधियाँ प्राय: बाबा आदम के जमाने से जमा रहती हैं, जबकि काष्ठ औषधियों का निश्चित जीवनकाल होता है, सो पुराने सूखे कालमेघ का उतना प्रभाव नहीं पड़ेगा। औषधियाँ यथासंभव नितांत ताजी प्रयुक्त की जानी चाहिए। गुरुकुल काँगड़ी तथा शांतिकुंज की औषधियाँ भी सर्वथा निरापद मानी जाती हैं अतएव प्रयोग के लिए कालमेघ चूर्ण वहाँ से भी प्राप्त किया जा सकता है। ❑

एक प्रकार का समर अपने श्रम की कमाई खाएँ

ईमानदारी का कमाया हुआ धान्य, परिश्रम से कमाया हुआ धान्य हराम का धान्य नहीं हैं। ध्यान रखें, हराम की कमाई को भी मैंने चोरी का माना है। जुए की कमाई, लॉटरी की कमाई, सट्टे की कमाई और बाप दादाओं की दी हुई कमाई को भी मैंने चोरी का माना है। हमारे यहाँ प्राचीनकाल से ही श्राद्ध की परंपरा है। श्राद्ध का मतलब यह था कि जो कमाऊ बेटे होते थे, बाप -दादों की कमाई को श्राद्ध में दे देते थे, अच्छे काम में लगा देते थे, ताकि बाप की जीवात्मा, जिसने जिदंगी भर परिश्रम किया है, उसकी जीवात्मा को शांति मिले! हम तो अपने हाथ पाँव से कमाकर खाएँगे। ईमानदार बेटे यही करते थे ।। ईमानदार बाप यही करते थे कि अपने बच्चों को स्वावलंबी बनाने के लिए उसे इस लायक बनाकर छोड़ा करते थे कि अपने हाथ- पाँव की मशक्कत से वे कमाएँ खाएँ। अपने हाथ की कमाई, पसीने की कमाई खा करके कोई आदमी बेईमान नहीं हो सकता, चोर नहीं हो सकता, दुराचारी नहीं हो सकता, व्यभिचारी नहीं हो सकता, कुमार्गगामी नहीं हो सकता। जो अपने हाथ से कमाएगा, उसे मालूम होगा कि खरच करना किसे कहते हैं। जो पसीना बहाकर कमाता है, वह पसीने से खरच करना भी जानता है। खरच करते समय उसको कसक आती है, दर्द आता है, लेकिन जिसे हराम का पैसा मिला है, बाप- दादों का पैसा मिला है, वह जुआ खेलेगा, शराब पीएगा और बुरे से बुरा कर्म करेगा। कौन करेगा पाप? किसको पड़ेगा पाप? बाप को? क्यों पड़ेगा? मैं इसे कमीना कहूँगा, जिसने कमा- कमाकर किसी को दिया नहीं। बेटे को दूँगा, सब जमा करके रख गया है दुष्ट कहीं का। वह सब बच्चों का सत्यानाश करेगा। मित्रों! हराम की कमाई एक और बेईमानी की कमाई दो, दोनों में कोई खास फर्क नहीं है, थोड़ा सा ही फर्क है। ईमानदार और परिश्रमी व्यक्ति हराम की और बेईमानी की कमाई नहीं खाते।

आर्थिक तंगी और कर्ज मुक्ति

कौशल पाण्डेय (ज्योतिष)

कभी-कभी मजबूरीवश या अपनी आवश्यकताओं के कारण लोगों को कर्जा लेना ही पड़ता है। कर्ज लेने वाले व्यक्ति को सामने वाले की बहुत सी सही और गलत मनमानी शर्तों को भी मानना पड़ता है। आजकल तो हर छोटा बड़ा आदमी कहीं न कहीं से मकान, गाड़ी, गृह उपयोगी वस्तुओं, शिक्षा, व्यापार आदि के लिए कर्ज लेता है। कई बार गलत समय पर कर्ज लेने के कारण या किसी भी अन्य कारण से कर्ज लेने के बाद उसे लौटाना व्यक्ति को भारी हो जाता है। वह लाख चाहकर भी कर्ज समय पर नहीं चुका पाता है। उस पर कर्ज लगातार बहुत अधिक बढ़ता ही जाता है और कई बार तो उसकी पूरी जिंदगी कर्ज चुकाते-चुकाते समाप्त हो जाती है। वैसे व्यक्ति को यथा संभव कर्जा लेने से बचना चाहिए। प्राचीन मान्यताओं के अनुसार कर्ज लेने व देने संबंधी कुछ आसान से उपाय बता रहे है। इन पर अमल करने पर निश्चित ही आपका कर्ज, बिल्कुल समय से सुविधानुसार आपके सिर से उथर जाएगा।

कर्ज मुक्ति मन्त्र-'ॐ ऋण-मुक्तेश्वर महादेवाय नमः' 'ॐ मंगलमूतन्ये नमः'

'ॐ गं ऋणहर्तायै नमः' इनमें से किसी भी एक मन्त्र के नित्य कम से कम एक माला के जप से व्यक्ति को अति शीघ्र कर्जे से मुक्ति मिलती है। किसी के सिर पर कर्ज है तो एक सफेद कपड़ा ले लिया और पांच फूल गुलाब के ले लिए, पहले एक फूल हाथ में लिया और गायत्री मंत्र बोलना है-**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्** अब इस फूल को कपड़े पर रख दिया। इसी प्रकार ऐसे ही पांचों फूल गायत्री मंत्र जपते हुये कपड़े पर रख दिये और कपड़े को गांठ लगाई और प्रार्थना करनी है कि मेरे सिर पर जो भार है-हे भगवान, हे भागीरथी गंगा!! वो भार भी बह जाये,दूर हो जाये, नष्ट हो जाये। ऐसा करके जो कपड़ा बांधा है, फूल रखकर बहते जल में उसे प्रवाहित कर दें।

व्यापार बढ़ा सकता है यह प्रयोग-कहते हैं कि अगर नजर लग जाए आपके फलते-फूलते व्यापार को तो बिक्री बंद हो जाती है,क्योंकि आज के समय में कोई भी किसी की तरक्की और आमदनी से खुश नहीं होता और किसी के फलते-फूलते व्यापार को सिर्फ इतना ही कह देना काफी होता है-अरे यार आपका धंधा तो बहुत बढ़िया चल रहा है। आपने देखा होगा कि किसी फलते-फूलते हरे-भरे वृक्ष पर भी बुरी नजर पड़ जाए तो सूखता चला जाता है, इसलिए हमारे बुजुर्ग कहा करते थे कि तीन चीज छिपा कर करनी उत्तम है। एक धन को छिपा कर रखना, अगर आप धन किसी के सामने रखेंगे तो भी बुरी नजर लग जाती है। व्यापार कितना भी फल-फूल रहा हो समझदार लोग व्यापार में रोना रोते ही रहते हैं। खाना भी किसी के सामने खाने से नजर लग जाती है और आपका पेट खराब हो जाता है। इसकी भी एक पहचान है। अगर आपका पेट खराब है और बदबूदार मल हो रहा है। तो समझें कि जनर लगी है। तीसरा पत्नी के साथ काम-क्रीड़ा भी छिपकर करनी चाहिए। सुंदरता पर भी नजर लग जाती है और महिलाओं की तबियत खराब रहती है। खैर हम बात व्यापार की कर रहे हैं। तो आप को निम्नलिखित उपाय करें और अपने व्यापार को बढ़ाये।

भंवर वीर तू मेरा चेला, खोल दुकान कहा कर मेरा।
उठे जो डंडी बिकै जो माल, भंवरवीर, सोखे नहि जाये।।

वह शाबर मन्त्र दुकान बंधन हटाने और व्यापार वृद्धि के लिए लाभदायक प्रयोग है। इसे नवरात्रि में करें तो विशेष लाभ होगा। अब अपने सामने काली उड़द या काली मिर्च के 1008 दाने रख लें। प्रतिदिन 1008 बार जाप करें। दुकान में कर सकें तो वहां करें, न कर सकें तो घर पर करें। सामने गुग्गल या धूप जलाकर रखें। पूर्णिमा के दिन अपनी दुकान पर जाएं, साथ में वे दाने भी ले जाएं। धूप या अगरबत्ती जलाकर 1008 बार मन्त्र पढ़ें। उन दानों को दुकान में बिखेर दें। कुछ दाने अपनी कुर्सी और तिजोरी के पास भी डालें। बचे दानों को काले कपड़े की पोटली में बांधकर लटका दें। अगर ये प्रयोग आप नवरात्रि से पहले करना चाहे तो रविवार को और मंगलवार को हफ्ते में दो बार भी प्रयोग करने से भी बंद व्यापार में लाभ मिलना शुरु हो जाता है। ❑

शिष्टाचार

साभार

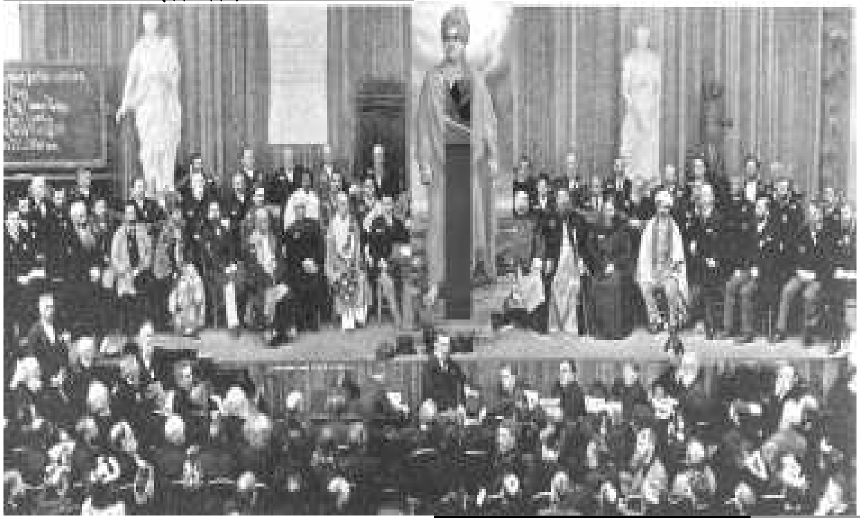

स्वामी विवेकानंद जी ने कहा है कि-विश्व में अधिकांश लोग इसलिए असफल हो जाते हैं, क्योंकि उनमें समय पर साहस का संचार नही हो पाता और वे भयभीत हो उठते हैं।

स्वामीजी की कही सभी बातें हमें उनके जीवन काल की घटनाओं में सजीव दिखाई देती हैं। उपरोक्त लिखे वाक्य को शिकागो की एक घटना ने सजीव कर दिया, किस तरह विपरीत परिस्थिति में भी उन्होने भारत को गौरवान्वित किया। हमें बहुत गर्व होता है कि हम इस देश के निवासी हैं जहाँ विवेकानंद जी जैसे महान संतों का मार्ग-दर्शन मिला। आज मैं आपके साथ शिकागो धर्म सम्मेलन से सम्बंधित एक छोटा सा वृत्तान्त बता रही हूँ। जो भारतीय संस्कृति में समाहित शिष्टाचार की ओर इंगित करता है।

1893 में शिकागो में विश्व धर्म सम्मेलन चल रहा था। स्वामी विवेकानंद भी उसमें बोलने के लिए गये हुए थे। 11सितंबर को स्वामी जी का व्याख्यान होना था। मंच पर ब्लैक बोर्ड पर लिखा हुआ था-हिन्दू धर्म—मुर्दा-धर्म। कोई साधारण व्यक्ति इसे देखकर क्रोधित हो सकता था, पर स्वामी जी भला ऐसा कैसे कर सकते थे। वह बोलने के लिये खड़े हुए और उन्होंने सबसे पहले (अमरीकावासी बहिनों और भाईयों) शब्दों के साथ श्रोताओं को संबोधित किया। स्वामीजी के शब्द ने जादू कर दिया, पूरी सभा ने करतल ध्वनि से उनका स्वागत किया।

इस हर्ष का कारण था, स्त्रियों को पहला स्थान देना। स्वामी जी ने सारी वसुधा को अपना कुटुंब मानकर सबका स्वागत किया था। भारतीय संस्कृति में निहित शिष्टाचार का यह तरीका किसी को न सूझा था। इस बात का अच्छा प्रभाव पड़ा। श्रोता मंत्र मुग्ध उनको सुनते रहे, निर्धारित 5 मिनट कब बीत गया पता ही न चला। अध्यक्ष कार्डिनल गिबन्स ने और आगे बोलने का अनुरोध किया। स्वामीजी 20 मिनट से भी अधिक देर तक बोलते रहे।

स्वामीजी की धूम सारे अमेरिका में मच गई। देखते ही देखते हजारों लोग उनके शिष्य बन गए और तो और, सम्मेलन में कभी शोर मचता तो यह कहकर श्रोताओं को शान्त कराया जाता कि यदि आप चुप रहेंगे तो स्वामी विवेकानंद जी का व्याख्यान सुनने का अवसर दिया जायेगा। सुनते ही सारी जनता शान्त हो कर बैठ जाती।

अपने व्याख्यान से स्वामीजी ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दू धर्म भी श्रेष्ठ है, जिसमें सभी धर्मो को अपने अंदर समाहित करने की क्षमता है। भारतीय संस्कृति, किसी की अवमानना या निंदा नही करती। इस तरह स्वामी विवेकानंद जी ने सात समंदर पार भारतीय संस्कृति की ध्वजा फहराई। ❑

स्वामी विवेकानंद जी ने कहा है कि-विश्व में अधिकांश लोग इसलिए असफल हो जाते हैं, क्योंकि उनमें समय पर साहस का संचार नही हो पाता और वे भयभीत हो उठते हैं।

आत्म चिंतन

स्वयं को माचिस की तीली जैसा मत बनाओ की थोड़ा सा घर्षण होते ही सुलग जाए। स्वयं को शांत सरोवर बनाओ कि कोई अंगारा फेंके तो खुद बुझ जाए।

खुशी पाने की चाह

मनोहर लाल

एक गाँव में एक किसान रहता था, जो कि बहुत गरीब था। वह खेत से आजीविका कमाने की कोशिश करता था पर इतना नहीं कमा पाता था कि अच्छा घर, महँगी चीजें या सुंदर वस्त्र ले सके। वह इतने फटे-पुराने कपड़े पहनता था की आसपास के कुछ पड़ोसी उसका मजाक उड़ाते थे। फिर भी वह व्यक्ति जो कुछ उसके पास था उससे संतुष्ट था। वह प्रभु का बड़ा भक्त था और अपना खाली समय प्रभु की भक्ति- ध्यान और प्रार्थना में लगाता था।

एक गाँव में एक किसान रहता था, जो की गरीब था। वह खेत से आजीविका कमाने की कोशिश करता था पर इतना नहीं कमा पाता था कि अच्छा घर, महँगी चीजें या सुंदर वस्त्र ले सकें। वह इतने फटे-पुराने कपड़े पहनता था की आसपास के कुछ पड़ोसी उसका मजाक उड़ाते थे। फिर भी वह व्यक्ति जो कुछ उसके पास था उससे संतुष्ट था।

उस व्यक्ति के कुछ दोस्तों ने उसे सलाह दी कि वह प्रभु की प्रार्थना में समय बर्बाद करने की बजाय, अपने लिए कुछ करे। वह व्यक्ति अपने जीवन से प्रसन्न था पर क्योंकि वे उसे बार-बार टोकते थे कि वह अपनी हालत बदलने की लिए कुछ करे, इसलिए उसके मन में एक शक का बीज उगने लगा। वह यह सोचने लगा अगर वह धनवान हो जाए तो हो सकता है की वह अधिक खुश रहने लगे। एक रात किसान को स्वप्न दिखाई दिया। उसने एक दैवी पुरुष को देखा उसने कहा कि वह शहर जाए, जहाँ उसे एक बड़ा खजाना मिलेगा। जब किसान उठा तो उस पर उसके दोस्तों का प्रभाव था कि वह धन की खोज करे। अतः उसने स्वप्न को सच मान लिया। वह शहर की यात्रा पर चल दिया। वह पहले कभी शहर नहीं गया वह शहर के नियमों से अनजान था। एक पुलिस इन्सपेक्टर ने इधर-उधर घूमते हुए पकड़ लिया और उसे पुलिस स्टेशन ले गया।

इन्सपेक्टर ने पूछा, 'तुम रात-दिन इधर-उधर घूमकर क्या कर रहे हो? किसान ने बताया, मैं एक खजाने की खोज में हूँ। मुझे एक सपना आया था। जिसमे मुझे बताया गया था कि वह बड़ा खजाना मुझे यहाँ मिलेगा। पुलिस इन्सपेक्टर ने बोला, तुम पागल हो। मुझे खजाना मिलने के कई सपने आए हैं। वे केवल स्वप्न है। स्वप्न में किसी पर ध्यान नहीं देता हूँ। वे बेकार के सपने हैं। उदाहरण के लिए- एक बार मुझे सपना आया कि मुझे शहर के बाहर एक गाँव की एक झोंपड़ी में जाना चाहिए। झोंपड़ी के पास से एक नहर गुजरती है। पास में एक छोटा खेत भी है, पर वह घर किसी गरीब का था। स्वप्न में मुझे बताया गया था कि वहां मुझे एक खजाना मिलेगा-पर मैं कभी वहां नहीं गया क्योंकि सपने सच नहीं होते है।

जब पुलिस इन्सपेक्टर घर का विवरण दे रहा था तो किसान को एक झटका सा लगा। जिस घर के बारे में वह बता रहा था। वह बिल्कुल किसान के घर के जैसा ही लग रहा था। पुलिस ने उसे वापिस उसके गाँव भेज दिया। व्यक्ति इस सम्भावना से फूला नहीं समा रहा था कि जिस खजाने को वह ढूँढ़ रहा था, वह स्वयं उसके घर के सामने के मैदान में हो सकता था। किसान उस स्थान पर गया जिसका विवरण इन्सपेक्टर ने दिया था। उसने खोजना शुरू किया। और सच में उसे एक बड़ा सन्दूक मिला, जिसमें भरे खजाने से वह धनवान बन गया। वह आश्चर्य चकित था कि इतने समय से स्वयं, उसके घर के पास खजाना छुपा हुआ था। यह कहानी हमारी अपनी अवस्था को बताती है। हम सम्पूर्ण संसार में प्रेम और खुशी ढूंढते रहते हैं पर हम यह नहीं जानते की सच्ची खुशी, सच्ची दौलत और सच्चा प्रेम हमारे अपने अन्तर में हमारा इंतजार कर रहें है। हम सोचते हैं कि खुशी हमसे बाहर है। हम सोचते है कि यह धन दौलत, नाम-प्रसिद्धि, जायजाद और सम्बंधों से मिलती है। पर सच्ची खुशी अन्तर में है। प्रभु हमारे अन्तर में है, प्रभु का प्रेम अन्तर मे है, बाहरी संसार मे ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उसका मुकाबला कर सके। सच्चे खजाने को बाहर खोजने के बजाय, हमें ध्यान अभ्यास में बैठना चाहिए और अन्तर में सच्चे धन को खोजना चाहिए। तब हम अपने जिंदगी को प्रेम, आनन्द, शाश्वत शांति और खुशी से भरी पाएँगे।

❑

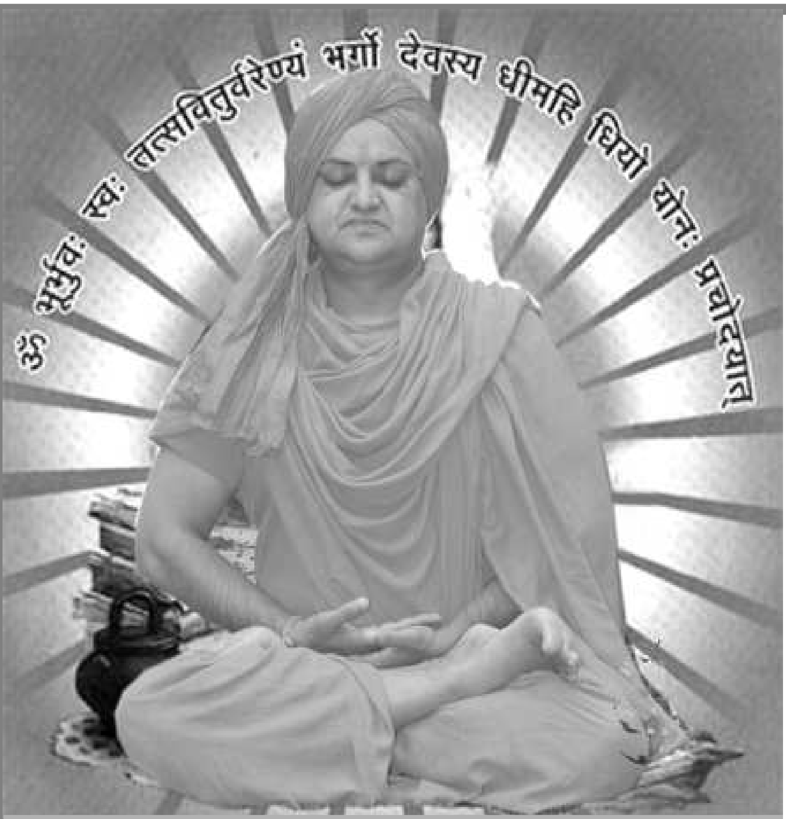

चिन्तन

कठिनाइयों से डरिये मत, जूझिये

☞ विशालकाय रेल इंजन से लेकर छोटी सुई तक बड़ी से बड़ी तथा छोटी से छोटी वस्तुओं के निर्माता जमशेद जी टाटा का बचपन घोर अभावों में बीता। वे नवसारी में जन्मे। पिता पुरोहित थे। आरम्भिक शिक्षा प्राप्ति के लिए जमशेद जी को एक सम्बन्धी का सहारा लेना पड़ा। विद्यार्थी काल में वे एक ऐसे कमरे में रहे जिसकी छत बारिश में हमेशा टपकती रहती। इतना पैसा नहीं था कि अधिक पैसे वाला कमरा किराये पर ले सकें। शिक्षा प्राप्ति के बाद एक कपड़े के कारखाने का उद्योग आरम्भ किया और उनकी परिश्रम शीलता व्यवहार कुशलता के बलबूते निरन्तर आगे बढ़ते गये।

☞ सम्पन्नता ही नहीं प्रतिभा के क्षेत्र में भी सामान्य से असामान्य स्थिति में जा पहुंचने वालों की एक दास्तान है कि उन्होंने परिस्थितियों को कभी भी अधिक महत्व नहीं दिया। हमेशा अपनी आन्तरिक क्षमताओं पर भरोसा किया। उनका भली भांति नियोजन करके आगे बढ़ते गये। बहुमुखी प्रतिभा के धनी पत्रकार, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं समाज सेवी बैंजामिन फेंकलिन प्रेस में टाइप धोने, मशीन सफाई करने, झाड़ू लगाने आदि का काम करते रहे पर उस काम को भी उन्होंने कभी छोटा नहीं माना और पूरे मनोयोग का परिचय देकर प्रेस का काम भी सीखते रहे।

☞ पन्द्रह व्यक्तियों का बड़ा परिवार था। दस वर्ष की आयु से ही उन्होंने घर की अर्थ व्यवस्था में हाथ बटाने के लिए आगे आना पड़ा। प्रेस के कार्य में उन्होंने प्रवीणता प्राप्त कर ली पर विज्ञान में अधिक अभिरुचि होने के कारण सम्बन्धित पुस्तकों का खाली समय में अध्ययन करते रहे। जिज्ञासा और मनोयोग की परिणति ही सफलता है। उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा भी उभरती चली गयी। एक साथ कई क्षेत्रों में विशेषता हासिल करके उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि प्रतिकूलताएं मानवी विकास में बाधक नहीं पुरुषार्थ एवं जीवन को निवारने का एक माध्यम भर है।

❑

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं, अंत राम कहि आवत नाहीं।

महामण्डलेश्वर डॉ. स्वामी उमाकान्तानंद सरस्वती जी महाराज

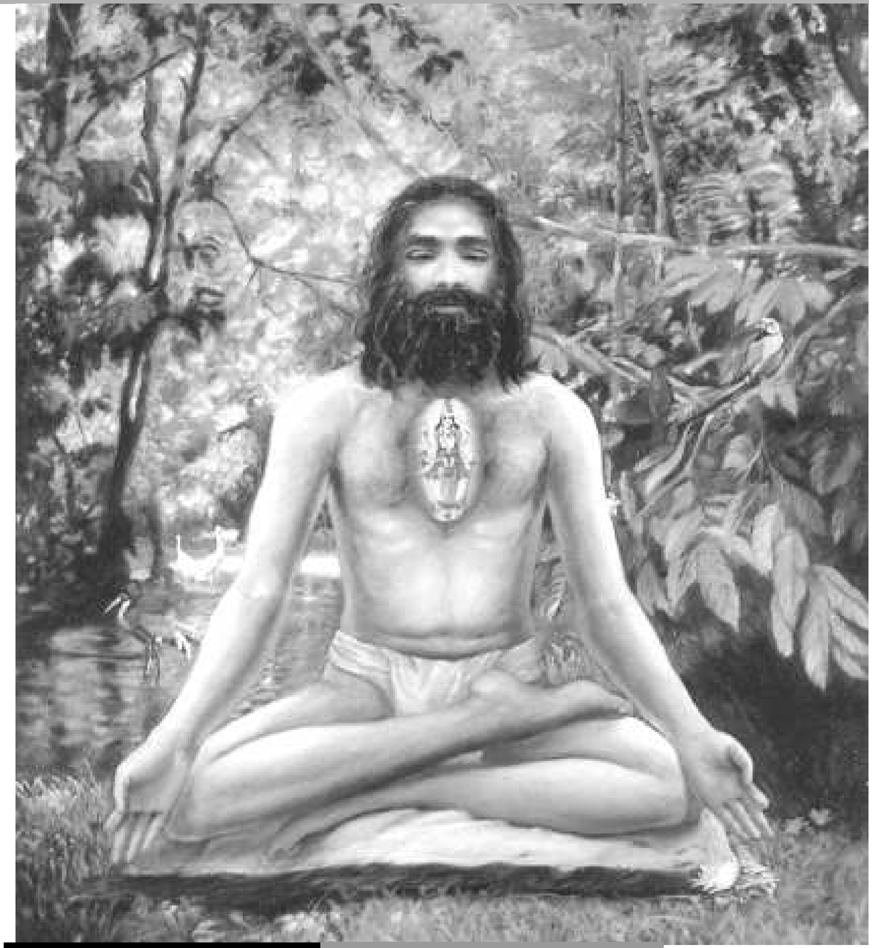

समस्त जीवन जिसकी लगन में बीता होगा वही अंतकाल में उसे याद आएगा। ईश्वर तब तक कृपा नहीं करते जब तक कि मनुष्य स्वयं कोई प्रयत्न न करे। सारा जीवन भगवान् के स्मरण में बीते और कदाचित् वह व्यक्ति अंतकाल में भगवान् को भूल जाय तो भी भगवान् उसे याद करेंगे।

समस्त जीवन जिसकी लगन में बीता होगा वही अंतकाल में उसे याद आएगा। ईश्वर तब तक कृपा नहीं करते जब तक कि मनुष्य स्वयं कोई प्रयत्न न करे। सारा जीवन भगवान् के स्मरण में बीते और कदाचित् वह व्यक्ति अंतकाल में भगवान् को भूल जाय तो भी भगवान् उसे याद करेंगे। सत्कर्म कभी व्यर्थ नहीं होता। भक्त मुझे भूले तो भी मैं उसको नहीं भुलाता ऐसा भगवान् ने कहा है। भीष्मपितामह की मृत्यु को उजागर करने के लिए द्वारकाधीश पधारे थे। भीष्मपितामह ने महाज्ञान का विश्वास न किया और उन्होंने प्रभु की शरण ली। भीष्मपितामह की मुत्यु से युधिष्ठिर को दु:ख तो हुआ किंतु उनकी सद्गति से उनको आनन्द भी हुआ।

धर्मराज राजसिंहासन पर बैठे। हस्तिनापुर का शासन करने लगे। उनके राज्य में अकाल नहीं है। न तो अतिवृष्टि होती है और न अनावृष्टि। धर्मराज के राज्य में न तो कोई भूखा है और न कोई बीमार। धर्म की मर्यादा का पालन करने वाला कभी भी दु:खी या बीमार नहीं होता। अनेक जन्मों की भोगवासना अभी मन में है। उसका बिल्कुल नाश तो नहीं हो सकता किंतु विवेक से उपभोग करोगे तो अंतकाल तक इन्द्रियाँ स्वस्थ रहेंगी। धर्म की मर्यादा में रह कर मनुष्य अर्थ और काम का उपभोग करेगा तो वह दु:खी नहीं होगा। संयम और सदाचार नहीं बढ़े तो धन-संपत्ति भी आनन्द नहीं दे सकेगी। सूतजी सावधान करते हैं। धर्मराज के राज्य में धर्म की भी शिक्षा दी जाती थी।

आरोग्यं भास्करात इच्छेत्, मोक्षं इच्छेत् जनार्दनात्।

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष भगवान् हैं और बाकी सभी देव भावना से सिद्धि देते हैं। सूर्यनारायण का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। उनके दर्शन के लिये भावना की वैसी कोई आवश्यकता नहीं है। इसी प्रत्यक्ष देव की आराधना करो।

धर्मराज भी सूर्यनारायण की उपासना करते थे। सूर्यनारायण की आराधना किए बिना बुद्धि शुद्ध नहीं होती। ज्यादा नहीं तो कम से कम रोज बारह सूर्य नमस्कार करो। मेरे सूर्यनारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। कृष्ण ही सूर्यनरायण हैं। श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वयं ही गीता में कहा है कि ज्योतिषां आदित्यो।

इस सूर्यनारायण की उपासना का क्रम

युधिष्ठिर सूर्यनारायण की उपासना करते थे। वन में सूर्यदेव ने उनको एक अक्षय-पात्र दिया। राम को भी सूर्य ही ने शक्ति दी थी और उसी शक्ति से उन्होंने रावण को मारा। राम ने भी यही आदर्श सामने रखा है कि मैं स्वयं ईश्वर हूँ फिर भी सूर्यनारायण की उपासना करता हूँ।

कहा गया है। उनकी उपासना करने वाला कभी दरिद्र नहीं बनता। महाभारत के वनपर्व में एक कथा है। युधिष्ठिर सूर्यनारायण की उपासना करते थे। वन में सूर्यदेव ने उनको एक अक्षय-पात्र दिया। राम को भी सूर्य ही ने शक्ति दी थी और उसी शक्ति से उन्होंने रावण को मारा। राम ने भी यही आदर्श सामने रखा है कि मैं स्वयं ईश्वर हूँ फिर भी सूर्यनारायण की उपासना करता हूँ।

धर्म के साथ नीति का विवाह अर्थात् सम्बन्ध न हो तब तक नीति विधवा जैसी ही है। और बिना नीति के धर्म विधुर है। अर्थोपार्जन वैसे तो धर्म है परन्तु वह धर्मानुकूल होना चाहिये। धर्मराज के पवित्र राज्य में किसी के भी घर में कोई क्लेश न था। पुत्र माता-पिता की आज्ञा का पालन करता था। उस समय राजा धर्मनिष्ठ होने के कारण प्रजा भी धर्मनिष्ठ थी। युधिष्ठर का राजतिलक करके श्रीकृष्ण द्वारिका गए, वहाँ की जनता ने रथयात्रा का दर्शन किया।

रथ में विराजित द्वारिकाधीश के रोज दर्शन करो। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म है। रथ सोने का है। एक झाँकी-सी करें तो हमारा हृदय पिघलेगा। इस शरीर- रथ में श्रीकृष्ण की झाँकी करो। हृदय में सिंहासन पर बिठाकर भक्तजन प्रभु का दर्शन करते हैं। ज्ञानीजन समाधि की अवस्था में ललाट में ब्रह्म-दर्शन करते हैं।

द्वारिकाधीश ने द्वारिका में प्रवेश किया। नगर-जन कहते हैं कि आपकी कृपा से वैसे तो सब ठीक था। एकमात्र दु:ख यही था कि आपका दर्शन नहीं कर सकते थे। सभी को कृष्ण-दर्शन की आतुरता है।

भगवान् ने अनेक रूप धारण किए और सोलह हजार रानियों के साथ राजप्रासाद में प्रवेश किया। भगवान् वाणी चतुर हैं। सभी रानियों से कहते हैं कि मैं तेरे ही घर में पहले आया हूँ।

दूसरे दिन रानियों के बीच प्रेम-कलह हुआ। भगवान् की यह दिव्य लीला है। उस समय कामदेव लड़ने आया। रासलीला में कामदेव पराजित हुआ था फिर भी उसे मन में असंतोष रह गया था कि उस समय तो कृष्ण बालक ही थे। उस समय मैं हारा था वह कोई अचरज की बात नहीं थी।

कामदेव ने श्रीकृष्ण से कहा कि जब सुन्दर युवतियाँ आपकी सेवा कर रही हों उसी समय मुझे झगड़ना है। सुन्दर प्रेमल हाव-भाव से रानियों ने श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। किंतु श्रीकृष्ण तो अजेय ही रहे।

वन के वृक्षों के तले बैठकर काम का दमन करना तो ठीक है किंतु अनेक रानियों के साथ रह कर जो काम को जीते वह तो परमात्मा है। श्रीकृष्ण का चिंतन-मनन करने वाले को काम सता नहीं सकता तो श्रीकृष्ण को तो वह केसे सतायेगा? ईश्वर वह है कि जिसे काम कभी अधीन न कर सके। जो काम के आधीन हो जाय वह जीव है। श्रीकृष्ण को कामदेव पराजित न कर सका। उसे अपने धनुष-बाण का त्याग करना पड़ा। श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं। शंकर भी योगेश्वर हैं। जो प्रवृत्ति में पूर्णत: रहकर भी उसमें आसक्त न बने, वही है योगीश्वर। जो संपूर्ण रुप से निवृत्ति में रहकर अपने निज स्वरूप में स्थिर रहे वह है योगीश्वर।

बारहवें अध्याय में परीक्षित के जन्म की कथा है। उत्तरा ने बालक को जन्म दिया। वह चारों ओर देखने लगा। माता के उदर में मुझे चतुर्भुज स्वरूप जो पुरुष दीखता था वह कहाँ है? परीक्षित भाग्यशाली था कि उसको माता के गर्भ में ही भगवान् के दर्शन हुए। यही कारण है कि वह उत्तम श्रोता है।

युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों से पूछा कि बालक कैसा होगा? ब्राह्मणों ने कहा-वैसे तो सभी ग्रह दिव्य हैं किंतु मृत्यु स्थान पर कुछ गड़बड़ी है। उसकी मृत्यु सर्पदंश से होगी। यह सुनकर धर्मराज को दु:ख हुआ। मेरे वंश का पुत्र सर्पदंश से मरे यह ठीक नहीं है। ब्राह्मणों ने उनको आश्वस्त किया। चाहे सर्पदंश से उसकी मृत्यु हो, किंतु उसे सद्गति मिलेगी। उसके अन्य ग्रह शुभ हैं। इन ग्रहों को देखकर ऐसा लगता है कि इस जीवात्मा का यह अंतिम जन्म है। नवें स्थान में स्वगृहे उच्च क्षेत्र का बृहस्पति जिसके हो, वह धर्मात्मा बनता है। परीक्षित दिनों-दिन बड़े हो रहे हैं। चौदहवें और पंद्रहवें अध्याय में धृतराष्ट्र-पांडव मोक्ष की कथा है। सोलहवें अध्याय से परीक्षित चरित्र का आरम्भ होता है। विदुरजी तीर्थयात्रा करते हुए

दिया। लाक्षागृह में आग लगायी आदि। यह धर्मराज तो धर्म की मूर्ति हैं सो तुम्हारे अपकार का बदला उपकार से दे रहे हैं। मुझे लगता है कि कुछ ही दिनों में पाण्डव प्रयाण करेंगे और तुम्हें सिंहासन पर बिठलायेंगे। तुम अब मोह छोड़ो। तुम्हारे सिर पर काल मंडरा रहा है। तुम्हारे मुख पर मुझे मृत्यु का दर्शन हो रहा है। समझ-बूझकर गृहत्याग करोगे तो कल्याण होगा नहीं तो काल के धक्के के कारण घर छोड़ना पड़ेगा। घर छोड़े बिना कोई चारा नहीं है। जो खुद समझ-सोचकर घर छोड़े वह बुद्धिमान है। कुछ ही समय में तुम्हारी मृत्यु होगी।

यह जीव ऐसा अनाड़ी है कि सोच-समझ कर स्वयं कुछ छोड़ना ही नहीं चाहता किंतु जब डाक्टर कहता है कि ब्लडप्रेशर है, काम-काज बंद करो। आराम नहीं करोगे तो जोखिम है, तब वह डर के मारे घर में बैठ जाता है। इस तरह लोग डाक्टर के कहने पर ही धंधा-कामकाज छोड़ते हैं।

धृतराष्ट्र कहता है-भाई, तेरा कहना ठीक है किंतु मैं तो अंधा हूँ। अकेला कहाँ जाऊँ? विदुरजी कहते हैं कि दिन को तो धर्मराज तुम्हें जाने नहीं देंगे, सो मैं मध्यरात्रि को ही तुम्हें ले चलूँ। धृतराष्ट्र और गांधारी को लेकर विदुरजी सप्तश्रोत तीर्थ गए।

सुबह हुई, तो युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के महल में आए। चाचाजी दिखाई नहीं देते। युधिष्ठिर ने सोचा कि हमने उनके सौ पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया अत: उन्होंने आत्महत्या की होगी। जब तक चाचा-चाची का समाचार न मिलेगा तब तक मैं पानी भी नहीं पीऊँगा। धर्मात्मा व्यथित होता है तो उससे मिलने संत

धर्म के साथ नीति का विवाह अर्थात् सम्बन्ध न हो तब तक नीति विधवा जैसी ही है। और बिना नीति के धर्म विधुर है। अर्थोपार्जन वैसे तो धर्म है परन्तु वह धर्मानुकूल होना चाहिये। धर्मराज के पवित्र राज्य में किसी के भी घर में कोई क्लेश न था। पुत्र माता-पिता की आज्ञा का पालन करता था। उस समय राजा धर्मनिष्ठ होने के कारण प्रजा भी धर्मनिष्ठ थी। युधिष्ठर का राजतिलक करके श्रीकृष्ण द्वारिका गए, वहाँ की जनता ने रथयात्रा का दर्शन किया।

प्रभास-क्षेत्र में आए। उन्हें खबर हुई कि सभी कौरवों का विनाश हुआ है और धर्मराज राजसिंहासन पर बैठे हैं। केवल मेरा भाई धृतराष्ट्र ही धर्मराज के यहाँ मुट्ठी भर खाने के लिए रह गया है।

विदुरजी आए। धर्मराज ने उनका स्वागत किया। विदुर जी सम्मान माँगने नहीं आए थे। अपने बन्धु को बन्धनमुक्त कराने के लिए आए थे। उन्होंने छत्तीस बरसों तक तीर्थयात्रा की। संत तीर्थों को पावन करते हैं। वैसे तो-

उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यानधारणा।
अधमा मूर्तिपूजा च, तीर्थयात्राऽधमाऽधमा॥

इसका कारण यह है कि यात्रा में अन्य चिंताओं के कारण परमात्मा का नियमित ध्यान नहीं हो पाता। सत्कर्म नियमपूर्वक नहीं होता है इससे तीर्थयात्रा की अपेक्षा भगवान् का ध्यान श्रेष्ठ है। देवी भागवत में लिखा है कि घर की अपेक्षा अधिक सत्कर्म तीर्थयात्रा में न हो सके तो वह तीर्थयात्रा व्यर्थ ही है।

विदुरजी ने छत्तीस वर्ष तक यात्रा की फिर भी बात तो अति संक्षेप में ही कही। आत्म-प्रशंसा मृत्यु है। अपने सत्कर्मों का स्वयं अपने मुख से वर्णन न करो। विदुरजी ने छत्तीस वर्ष की यात्रा का छत्तीस शब्दों में ही वर्णन किया है। आजकल तो लोग, हमने इतनी यात्रा की, ऐसी बात बार-बार करते हैं। अपने हाथ से जो भी पुण्य कार्य हों उसे भूल जाओ और जो पाप हो उसे याद रखो। सुखी होने का यह मार्ग है। किंतु मनुष्य पुण्य को तो याद रखता है किंतु पाप को भूल जाता है।

युवावस्था में जिसने बहुत पाप किए हों उसे वृद्धावस्था में नींद नहीं आती। मध्यरात्रि के समय विदुरजी धृतराष्ट्र के पास गए वे जाग ही रहे थे। विदुरजी ने पूछा कि नींद नहीं आ रही है क्या। जिस भीम को तुमने विषभरे लड्डू खिलाए उसी के घर में तुम अब मीठे लड्डू खा रहे हो। धिक्कार है तुम्हें! पांडवों को तुमने दु:ख दिया। तुम ऐसे दुष्ट हो कि राजसभा में द्रोपदी को बुलाने की तुमने सम्मति दी थी। पांडवों को छोड़कर अब यात्रा करो।

धृतराष्ट्र कहता है कि मेरे भतीजे बड़े अच्छे हैं। मेरी खूब सेवा करते हैं। उन्हें छोड़कर जाने को दिल ही नहीं होता। विदुरजी कहते हैं। अब तुम्हें भतीजा प्यारा लग रहा है। याद करो कि तुमने पांडवों को मारने के लिए कितने प्रयत्न किए थे। भीमसेन को लड्डू में विष

आते हैं। धर्मराज के पास उस समय नारद जी आए। धर्मराज ने उनसे कहा कि मेरे पापों के कारण ही चाचा जी चले गए। वैष्णव वह है जो अपने ही दोषों को सोचे, दूसरों के दोषों को नहीं।

नारद जी समझाते हैं कि धृतराष्ट्र को तो सद्‌गति मिलने वाली है। चिंता मत कर। हर एक जीव मृत्यु के अधीन है जहाँ चाचा जायेंगे वहाँ तुम्हें भी जाना है। आज से पाँचवें दिन चाचा की सद्‌गति होगी और फिर तुम्हारी बारी आएगी। चाचा के लिए अब रोना नहीं। अब तुम अपना ही सोचो।

मृत्यु से ग्रसित व्यक्ति कभी वापस नहीं आता। जीवित अपने ही लिए रोए वह ठीक है। एक की मृत्यु के पीछे दूसरा रोता है। किंतु रोनेवाला यह नहीं समझता कि जो वहाँ गया है उसके पीछे उसे भी जाना है। रोज सोचो कि मुझे अपनी मृत्यु उजागर करनी है तुम्हारे लिए अब छः महीने बाकी हैं। तुम अपनी मृत्यु की सोचो। सूतजी सावधान करते हैं। शैय्या में सोने के बाद अर्थात् अंतकाल में आया हुआ सयानापन किस काम का? वह निरर्थक है।

नारद जी कहते हैं– तुम्हें मैं भगवत् प्रेरणा से सावधान करने के लिए आया हूँ। विदुरजी धृतराष्ट्र को सावधान करने आए थे। मैं तुम्हें सावधान करने आया हूँ। छः मास के पश्चात् कलियुग का प्रारम्भ होगा। अब तुम किसी की भी चिंता न करो। तुम अपनी चिंता करो। युधिष्ठिर ने कई यज्ञ किये। भगवान् द्वारिका गये तो साथ में अर्जुन को भी ले गये। प्रभु की इच्छा थी कि युदुकुल का नाश हो तो अच्छा हो और यदुकुल का सर्वनाश हो गया।

युधिष्ठिर ने भीम से कहा कि नारदजी ने कहा था वह समय अब आ रहा है ऐसा लगता है। मुझे कलियुग की परछाईं दिखाई दे रही है। मेरे राज्य में अधर्म बढ़ रहा है। मंदिर में ठाकुरजी का स्वरूप आनन्दमय नहीं दीखता है। सियार और कुत्ते मेरे सामने रोते हैं। तुझे मैं और क्या कहूँ?

मैं कल घूमने गया था। एक लोहार के पास एक वस्तु देखी। मैंने पूछा कि यह क्या है? तो उसने कहा कि यह तो ताला है। लोगों के घरों चोरी होने लगी है सो ताले लगाने पड़ते हैं। आज से छः महीने पहले की बात है। एक वैश्य ने एक ब्राह्मण को एक घर बेचा था। उस घर की बुनियाद में-से सोना मिला। ब्राह्मण वह सोना लेकर सेठ के पास गया। सेठ धर्मनिष्ठ था। उसने कहा कि मैंने तो मकान तुम्हें बेच दिया था सो उसमें-से जो कुछ भी मिला वह सब तुम्हारा ही है। ब्राह्मण ने कहा कि उस सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं है।

मेरे राज्य की जनता कितनी धर्मनिष्ठ थी। उसी समय मैंने कहा था कि छः महीने में ही इन दोनों का मन कलुषित हो जायगा। वैसा ही हुआ। कल वे दोनों मेरे पास आए थे और धन पर अपना-अपना अधिकार जता रहे थे और अपने साथ एक-एक वकील भी लेते आए थे। लगता है कि मेरे पवित्र राज्य में कलि का प्रवेश अब तो हो ही गया है।

नारद जी समझाते हैं कि धृतराष्ट्र को तो सद्‌गति मिलने वाली है। चिंता मत कर। हर एक जीव मृत्यु के अधीन है जहाँ चाचा जायेंगे वहाँ तुम्हें भी जाना है। आज से पाँचवें दिन चाचा की सद्‌गति होगी और फिर तुम्हारी बारी आएगी। चाचा के लिए अब रोना नहीं। अब तुम अपना ही सोचो।

शेष अगले अंक में

भूमिका-'अध्यात्म' दीक्षा की

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

'भुवः' भूमिका में पहुँचने पर दूसरी दीक्षा लेनी पड़ती है। इसे प्राण-दीक्षा या अग्नि-दीक्षा कहते हैं। प्राणमय कोश एवं मनोमय कोश के अन्तर्गत छिपी हुई शक्तियों को जाग्रत् करने की साधना का शिक्षण क्षेत्र यही है। साधना संग्राम के अस्त्र-शस्त्रों को धारण करना, सँभालना और चलाना इसी भूमिका में सीखा जाता है।

दूसरी भूमिका-'अग्नि' दीक्षा

दूसरी 'भुवः' भूमिका में पहुँचने पर दूसरी दीक्षा लेनी पड़ती है। इसे प्राण-दीक्षा या अग्नि-दीक्षा कहते हैं। प्राणमय कोश एवं मनोमय कोश के अन्तर्गत छिपी हुई शक्तियों को जाग्रत् करने की साधना का शिक्षण क्षेत्र यही है। साधना संग्राम के अस्त्र-शस्त्रों को धारण करना, सँभालना और चलाना इसी भूमिका में सीखा जाता है। प्राणशक्ति की न्यूनता का उपचार इसी क्षेत्र में होता है। साहस, उत्साह, परिश्रम, दृढ़ता, स्फूर्ति, आशा, धैर्य, लगन आदि वीरोचित गुणों की अभिवृद्धि इसी दूसरी भूमिका में होती है। मनुष्य शरीर के अन्तर्गत ऐसे अनेक चक्र, उपचक्र, भ्रमर, उपत्यिका, सूत्र प्रत्यावर्तन, बीज, मेरु आदि गुप्त संस्थान होते हैं, जो प्राणमय भूमिका की साधना से जाग्रत् होते हैं। इस जागरण के फलस्वरूप साधाक में ऐसी अनेक विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जैसी कि साधारण मनुष्यों में नहीं देखी जातीं।

भुवः भूमिका में ही मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के चतुष्टय का संशोधन, परिमार्जन एवं विकास होता है। यह सब कार्य मध्यमा और पश्यन्ती वाणी द्वारा किया जाता है। वैखरी वाणी द्वारा वचनों के माध्यम से प्रारम्भिक साधाक को 'भूः' क्षेत्र के मन्त्र दीक्षित को सलाह, शिक्षा आदि दी जाती है। जब प्राण दीक्षा होती है, तो गुरु अपना प्राण शिष्य के प्राण में घोल देता है, बीज रुप से अपना आत्मबल साधक के अन्तःकरण में स्थापित कर देता है। जैसे आग से आग जलायी जाती है, बिजली की धारा से बल्व जलते या पंखे चलते हैं, उसी र्प्रकार अपना शक्ति-भाग बीज रूप से दूसरे की मनोभूमि में जमाकर वहाँ उसे सींचा और बढ़ाया जाता है। इस क्रिया पद्धति को अग्नि दीक्षा कहते हैं। अशक्त को सशक्त बनाना, निष्क्रिय को सक्रिय बनाना, निराश को आशान्वित करना प्राण दीक्षा का काम है। मन से विचार उत्पन्न होता है, अग्नि से क्रिया उत्पन्न होती है। अन्तरूभूमि में हलचल, क्रिया, प्रगति, चेष्टा, क्रान्ति, बेचौनी, आकांक्षा का तीव्र गति से उदय होता है।

साधारणतः लोग आत्मोन्नति की ओर कोई ध्यान नहीं देते, थोड़ा-सा देते हैं तो उसे बड़ा भारी बोझ समझते हैं, कुछ जप तप करते हैं तो उन्हें अनुभव होता है मानो बहुत बड़ा मोर्चा जीत रहे हों। परन्तु जब आन्तरिक स्थिति भुवः क्षेत्र में पहुँचती है, तो साधक को बड़ी बेचैनी और असन्तुष्टि होती है। उसे अपना साधन बहुत साधाारण दिखाई पड़ता है और अपनी उन्नति उसे बहुत मामूली दीखती है। उसे छटपटाहट उवं जल्दी होती है कि मैं किस प्रकार शीघ्र लक्ष्य तक पहुँच जाऊँ। अपनी उन्नति चाहे कितनी ही सुव्यवस्थित ढंग से हो रही हो, पर उसे सन्तोष नहीं होता। यह व्याकुलता उसकी कोई भूल नहीं होती वरन् भीतर ही भीतर जो तीव्र क्रिया शक्ति काम कर रही है उसकी प्रतिक्रिया है। भीतरी क्रिया, प्रवृत्ति और प्रेरणा का बाह्य लक्षण असन्तोष है। यदि असन्तोष न हो, तो समझना चाहिए कि साधक की क्रिया शक्ति शिथिल हो गई। जो साधक दूसरी भूमिका में है, उसका असन्तोष जितना ही तीव्र होगा, उतनी ही क्रिया शक्ति तेजी से काम करती रहेगी। बुद्धिमान् पथ-प्रदर्शक दूसरी कक्षा के साधक में सदा असन्तोष भड़काने का प्रयत्न करते हैं ताकि आन्तरिक क्रिया और भी सतेज हो, साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि वह असन्तोष कहीं निराशा में परिणत न हो जाय।

तीसरी भूमिका-'ब्रह्म दीक्षा'- प्रथम

तीसरी भूमिका 'स्व:' है। इसे ब्र्रह्म-दीक्षा कहते हैं। जब दूध अग्नि पर औटाकर नीचे उतार लिया जाता है और ठण्डा हो जाता है, तब उसमें दही का जामन देकर जमा दिया जाता है, फलस्वरुप वह सारा दही ही बन जाता है। मन्त्र द्वारा दृष्टिकोण का परिमार्जन करके साधक अपने सांसारिक जीवन को प्रसन्नता और सम्पन्नता से ओत-प्रोत करता है, अग्नि द्वारा अपने कुसंस्कारों, पापों, भूलों, कषायों, दुर्बलताओं को जलाता है, उनसे अपना पिण्ड छुड़ाकर बन्धन मुक्त होता है एवं तप की उष्मा द्वारा अन्त:करण को पकाकर ब्राह्मीभूत करता है। दूध पकते-पकते जब रबड़ी, मलाई आदि की शक्ल में पहुँच जाता है, तब उसका मूल्य और स्वाद बहुत बढ़ जाता है।

पहली ज्ञान-भूमि, दूसरी शक्ति- भूमि और तीसरी ब्रह्म-भूमि होती है। क्रमश: एक के बाद एक को पार करना पड़ता है। पिछली दो कक्षाओं को पार कर साधक जब तीसरी कक्षा में पहुँचता है, तो उसे सद्‌गुरु द्वारा ब्रह्म-दीक्षा लेने की आवश्यकता होती है। यह 'परा' वाणी द्वारा होती है। बैखरी वाणी द्वारा मुँह से शब्द उच्चारण करके ज्ञान दिया जाता है। मध्यमा और पश्यन्ती वाणियों द्वारा शिष्य के प्राणमय और मनोमय कोश में अग्नि संस्कार किया जाता है। परा वाणी द्वारा आत्मा बोलती है और उसका सन्देश दूसरी आत्मा सुनती है। जीभ की वाणी कान सुनते हैं, मन की वाणी नेत्र सुनते हैं, हृदय की वाणी हृदय सुनता है और आत्मा की वाणी आत्मा सुनती है। जीभ 'बैखरी' वाणी बोलती है, मन 'मध्यमा' बोलता है, हृदय की वाणी 'पश्यन्ती' कहलाती है और आत्मा 'परा' वाणी बोलती है। ब्रह्म-दीक्षा में जीभ, मन, हृदय किसी को नहीं बोलना पड़ता। आत्मा के अन्तरंग क्षेत्र में जो अनहद ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे दूसरी आत्मा ग्रहण करती है। उसे ग्रहण करने के पश्चात् वह भी ऐसी ही ब्राह्मीभूत हो जाती है जैसा थोड़ा-सा दही पड़ने से औटाया हुआ दूध सबका सब दही बन जाता है।

काला कोयला या सड़ी-गली लकड़ी का टुकड़ा जब अग्नि में पड़ता है, तो उसका पुराना स्वरूप बदल जाता है और वह अग्निमय होकर अग्नि के ही गुणों से सुसज्जित हो जाता है। यह कोयला या लकड़ी का टुकड़ा भी अग्नि के गुणों से परिपूर्ण होता है और गर्मी, प्रकाश तथा जलाने की शक्ति भी उसमें अग्नि के समान होती है। ब्राह्मी दीक्षा से ब्रह्मभूत हुए साधक का शरीर तुच्छ होते हुए भी उसकी अन्तरंग सत्ता ब्राह्मीभूत हो जाती है। उसे अपने भीतर-बाहर चारों ओर सत् ही सत् दृष्टिगोचर होता है। विश्व में सर्वत्र उसे ब्रह्म ही ब्रह्म परिलक्षित होता है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि देकर अपना विराट् रूप दिखाया था, अर्थात् उसे वह ज्ञान दिया था जिससे विश्व के अन्तरंग में छिपी हुई अदृश्य ब्रह्मसत्ता का दर्शन कर सके। भगवान् सब में व्यापक है, पर उसे कोई बिरले ही देखते, समझते हैं। भगवान् ने अर्जुन को यह दिव्य दृष्टि दी जिससे उसकी ईक्षण शक्ति इतनी सूक्ष्म और पारदर्शी हो गयी कि वह उन दिव्य तत्वों का अनुभव करने लगा, जिसे साधारण लोग नहीं कर पाते। इस दिव्य दृष्टि को ही पाकर योगी लोग आत्मा का, ब्रह्म का साक्षात्कार अपने भीतर और बाहर करते हैं तथा ब्राह्मी गुणों से, विचारों

इसे ब्र्रह्म-दीक्षा कहते हैं। जब दूध अग्नि पर औटाकर नीचे अतार लिया जाता है और ठण्डा हो जाता है, तब उसमें दही का जामन देकर जमा दिया जाता है, फलस्वरुप वह सारा दही ही बन जाता है। मन्त्र द्वारा दृष्टिकोण का परिमार्जन करके साधक अपने सांसारिक जीवन को प्रसन्नता और सम्पन्नता से ओत-प्रोत करता है, अग्नि द्वारा अपने कुसंस्कारों, पापों, भूलों, कषायों, दुर्बलताओं को जलाता है, उनसे अपना पिण्ड छुड़ाकर बन्धन मुक्त होता है

से, स्वभावों से, कार्यो से ओतप्रोत हो जाते हैं। यशोदा ने, कौशल्या ने, काकभुशुण्डि ने ऐसी ही दिव्य दृष्टि पाई थी और ब्रह्म का साक्षात्कार किया था। ईश्वर का दर्शन इसे ही कहते हैं। ब्रह्म दीक्षा पाने वाला शिष्य ईश्वर में अपनी समीपता और स्थिति का वैसे ही अनुभव करता है जैसे कोयला अग्नि में पड़कर अपने को अग्निमय अनुभव करता है

तीसरी भूमिका- 'ब्रह्म दीक्षा'-द्वितीय

द्विजत्व की तीन कक्षाएँ हैं- ब्राह्मण, वैश्य। पहली कक्षा है- वैश्य । वैश्य का उद्देश्य है- सुख सामग्री का उपार्जन। उसको मन्त्र (विचार) द्वारा यह लोक व्यवहार सिखाया जाता है, वह दृष्टिकोण दिया जाता है जिसके द्वारा सांसारिक जीवन सुखमय, शान्तिमय, सफल एवं सुसम्पन्न बन सके। बुरे गुण, कर्म एवं स्वभावों के कारण लोग अपने आपको चिन्ता, भय, दु:ख, रोग, क्लेश एवं दरिद्रता के चंगुल में फँसा लेते हैं। यदि उनका दृष्टिकोण सही हो, दस शूलों से बचे रहें तो निश्चय ही मानव जीवन स्वर्गीय आनन्द से ओत-प्रोत होना चाहिए।

क्षत्रिय तत्व का आधार है- शक्ति। शक्ति तप से उत्पन्न होती है। दो वस्तुओं को घिसने से गर्मी पैदा होती है। पत्थर पर घिसने से चाकू तेज होता है। बिजली की उत्पत्ति घर्षण से होती है। बुराइयों के, त्रुटियों के, कुसंस्कारों के, विकारों के विरुद्ध संघर्ष कार्य को तप कहते हैं। तप से आत्मिक शक्ति उत्पन्न होती है और उसे जिस दिशा में भी प्रयुक्त किया जाए उसी में चमत्कार उत्पन्न हो जाते हैं। शक्ति स्वयं ही चमत्कार है, शक्मि का नाम ही सिद्धि है। अग्नि-दीक्षा से तप आरम्भ होता है, आत्मदान के लिए युद्ध छेड़ा जाता है। गीता में भगवान् ने अर्जुन को उपदेश दिया था कि 'तू निरन्तर युद्ध कर।' निरन्तर युद्ध किससे करता? महाभारत तो थोड़े ही दिन में समाप्त हो गया था, फिर अर्जुन निरन्तर किससे लड़ता? भगवान् का संकेत आन्तरिक शत्रुओं से संघर्ष जारी रखने का था। यही अग्नि-दीक्षा का उपदेश था। अग्नि- दीक्षा से दीक्षित व्यक्ति में क्षत्रियत्व का, साहस का, शौर्य का, पुरुषार्थ का, पराक्रम का विकास होता है। इससे वह यश का भागी बनता है।

मन्त्र दीक्षा से साधक व्यवहार कुशल बनता है और अपने जीवन को सुख- शांति, सहयोग एवं सम्पन्नता से भरा-पूरा कर लेता है। अग्नि-दीक्षा से उसकी प्रतिभा, प्रतिष्ठा, ख्याति, प्रशंसा एवं महानता का प्रकाश होता है। दूसरों का सिर उसके चरणों में स्वत: झुक जाता है। लोग उसे नेता मानते हैं, उसका अनुसरण और अनुगमन करते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त दो दीक्षाओं द्वारा वैश्य और क्षत्रिय बनने के उपरान्त साधक ब्राह्मण बनने के लिए अग्रसर होता है। ब्रह्मदीक्षा से उसे 'दिव्य दृष्टि' मिलती है, इसे नेत्रोन्मीलन कहते हैं।

शंकर ने तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को जला दिया था। अर्जुन को भगवान् ने ''दिव्यं ददामि ते चक्षु:'' दिव्य नेत्र देकर अपने विराट् स्वरूप का दर्शन सम्भव करा दिया था। वह तृतीय नेत्र हर योगी का खुलता है, उसे वे बातें दिखाई पड़ती हैं जो साधारण व्यक्तियों को नहीं दिखतीं। उनको कण-कण में परमात्मा का पुण्य प्रकाश बहुमूल्य रत्नों की तरह जगमगाता हुआ दिखाई पड़ता है। भक्त माइकेल को प्रत्येक शिला में स्वर्गीय फरिश्ता दिखाई पड़ता था। सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि बड़ी संकुचित होती है, वे आज के हानि-लाभों में रोते-हँसते हैं, पर ब्रह्मज्ञानी दूर तक देखता है। वह वस्तु और परिस्थिति पर पारदर्शी विचार करता है और प्रत्येक अनुभव करता हुआ प्रसन्न रहता है। विश्व मानव की सेवा में ही वह अपना जीवन

मन्त्र दीक्षा से साधक व्यवहार कुशल बनता है और अपने जीवन को सुख-शांति, सहयोग एवं सम्पन्नता से भरा-पूरा कर लेता है। अग्नि-दीक्षा से उसकी प्रतिभा, प्रतिष्ठा, ख्याति, प्रशंसा एवं महानता का प्रकाश होता है। दूसरों का सिर उसके चरणों में स्वत: झुक जाता है। लोग उसे नेता मानते हैं, उसका अनुसरण और अनुगमन करते हैं।

ईश्वर में विश्वास रखने की सीख

मोहित पाण्डेय

4 साल से किशनगढ़ गाँव में बारिश की एक बूँद तक नहीं गिरी थी। सभी बड़े परेशान थे। हरिया भी अपने बीवी-बच्चों के साथ जैसे-तैसे समय काट रहा था। एक दिन बहुत परेशान होकर वह बोला,अरे ओ मुन्नी की माँ, जरा बच्चों को लेकर पूजा घर में तो आओ। बच्चों की माँ 6 साल की मुन्नी और 4 साल के राजू को लेकर पूजा घर में पहुंची।

हरिया हाथ जोड़ कर भगवान् के सामने बैठा था, वह रुंधी हुई आवाज में अपने आंसू छिपाते हुए बोला, सुना है भगवान् बच्चों की जल्दी सुनता है। चलो हम सब मिलकर ईश्वर से बारिश के लिए प्रार्थना करते हैं। सभी अपनी-अपनी तरह से बारिश के लिए प्रार्थना करने लगे। मुन्नी मन ही मन बोली- भगवान् जी मेरे बाबा बहुत परेशान हैं। आप तो सब कुछ कर सकते हैं। हमारे गाँव में भी बारिश कर दीजिये न। पूजा करने के कुछ देर बाद हरिया उठा और घर से बाहर निकलने लगा। आप कहाँ जा रहे हैं बाबा। मुन्नी बोली। बस ऐसे ही खेत तक जा रहा हूँ बेटा, हरिया बाहर निकलते हुए बोला।

अरे रुको-रुको! अपने साथ ये छाता तो लेते जाओ, मुन्नी दौड़ कर गयी और खूंटी पर टंगा छाता ले आई। छाता देख कर हरिया बोला, अरे! इसका क्या काम, अब तो शाम होने को है धूप तो जा चुकी है। मुन्नी मासूमियत से बोली, अरे बाबा अभी थोड़ी देर पहले ही तो हमने प्रार्थना की है। कहीं बारिश हो गयी तो! मुन्नी का जवाब सुन हरिया स्तब्ध रह गया।

कभी वो आसमान की तरफ देखता तो कभी अपनी बिटिया के भोले चेहरे की तरफ! उसी क्षण उसने महसूस किया कि कोई आवाज उससे कह रही हो- प्रार्थना करना अच्छा है। लेकिन उससे भी जरूरी है इस बात में यकीन रखना कि तुम्हारी प्रार्थना सुनी जायेगी और फिर उसी के मुताबिक काम करना। हरिया ने फौरन अपनी बेटी को गोद में उठा लिया, उसके माथे को चूमा और छाता अपने हाथ में घुमाते हुए आगे बढ़ गया।

दोस्तों, हम सभी प्रार्थना करते हैं पर हम सभी अपनी प्रार्थना में विश्वास नहीं करते। और ऐसे में हमारी प्रार्थना बस शब्द बन कर रह जाती है। वास्तविकता में नहीं बदलती। सभी धर्मों में विश्वास की शक्ति का उल्लेख है, कहते भी हैं कि दृढ विश्वास हो तो इंसान पहाड़ भी हिला सकता है। पद बिज दशरथ मांझी के रूप में हमारे सामने इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण भी है। इसलिए अपनी पूजा को सही मायने में सफल होते देखना चाहते हैं तो ईश्वर में विश्वास रखें और ऐसे भजन करें मानो आपको प्रार्थना सुनी ही जाने वाली हो और जब आप लगातार ऐसा करेंगे तो भगवान् आपकी जरूर सुनेगा!

❑

कभी वो आसमान की तरफ देखता तो कभी अपनी बिटिया के भोले चेहरे की तरफ! उसी क्षण उसने महसूस किया कि कोई आवाज उससे कह रही हो- प्रार्थना करना अच्छा है। लेकिन उससे भी जरूरी है इस बात में यकीन रखना कि तुम्हारी प्रार्थना सुनी जायेगी और फिर उसी के मुताबिक काम करना।

एक चुटकी जहर रोजाना

साभार

एक युवती का विवाह हुआ और वह अपने पति और सास के साथ अपने ससुराल में रहने लगी। कुछ ही दिनों बाद आरती को आभास होने लगा कि उसकी सास के साथ पटरी नहीं बैठ रही है। सास पुराने ख्यालों की थी और बहू नए विचारों वाली।

आरती और उसकी सास का आये दिन झगड़ा होने लगा।

दिन बीते, महीने बीते-साल भी बीत गया। न तो सास टीका-टिप्पणी करना छोड़ती और न आरती जवाब देना। हालात बद से बदतर होने लगे। आरती को अब अपनी सास से पूरी तरह नफ़रत हो चुकी थी। आरती के लिए उस समय स्थिति और बुरी हो जाती जब उसे भारतीय परम्पराओं के अनुसार दूसरों के सामने अपनी सास को सम्मान देना पड़ता। अब वह किसी भी तरह सास से छुटकारा पाने की सोचने लगी। एक दिन जब आरती का अपनी सास से झगड़ा हुआ और पति भी अपनी माँ का पक्ष लेने लगा तो वह नाराज होकर मायके चली आई।

आरती के पिता आयुर्वेद के डॉक्टर थे। उसने रो-रो कर अपनी व्यथा पिता को सुनाई और बोली। आप मुझे कोई जहरीली दवा दे दीजिये जो मैं जाकर उस बुढ़िया को पिला दूँ नहीं तो मैं अब ससुराल नहीं जाऊँगी।

आरती के पिता आयुर्वेद के डॉक्टर थे। उसने रो-रो कर अपनी व्यथा पिता को सुनाई और बोली। आप मुझे कोई जहरीली दवा दे दीजिये जो मैं जाकर उस बुढ़िया को पिला दूँ नहीं, तो मैं अब ससुराल नहीं जाऊँगी। बेटी का दुःख समझते हुए पिता ने आरती के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा-बेटी, अगर तुम अपनी सास को जहर खिला कर मार दोगी तो तुम्हें पुलिस पकड़ ले जाएगी और साथ ही मुझे भी, क्योंकि वो जहर मैं तुम्हें दूंगा। इसलिए ऐसा करना ठीक नहीं होगा।

लेकिन आरती जिद पर अड़ गई। आपको मुझे जहर देना ही होगा।

अब मैं किसी भी कीमत पर उसका मुँह देखना नहीं चाहती!

कुछ सोचकर पिता बोले-ठीक है जैसी तुम्हारी मर्जी। लेकिन मैं तुम्हें जेल जाते हुए भी नहीं देख सकता इसलिए जैसे मैं कहूँ वैसे तुम्हें करना होगा! मंजूर हो तो बोलो?

क्या करना होगा? आरती ने पूछा।

पिता ने एक पुड़िया में जहर का पाउडर बाँधकर आरती के हाथ में देते हुए कहा-तुम्हें इस पुड़िया में से सिर्फ एक चुटकी जहर रोज अपनी सास के भोजन में मिलाना है। कम मात्रा होने से वह एकदम से नहीं मरेगी बल्कि धीरे-धीरे आंतरिक रूप से कमजोर होकर 5 से 6 महीनों में मर जाएगी। लोग समझेंगे कि वह स्वाभाविक मौत मर गई।

पिता ने आगे कहा -लेकिन तुम्हें बेहद सावधान रहना होगा। ताकि तुम्हारे पति को बिलकुल भी शक न होने पाए, वरना हम दोनों को जेल जाना पड़ेगा! इसके लिए तुम आज के बाद अपनी सास से बिलकुल भी झगड़ा नहीं करोगी, बल्कि उसकी सेवा करोगी।

यदि वह तुम पर कोई टीका-टिप्पणी

करती है तो तुम चुपचाप सुन लोगी, बिलकुल भी प्रत्युत्तर नहीं दोगी! बोलो कर पाओगी ये सब? आरती ने सोचा, छः महीनों की ही तो बात है, फिर तो छुटकारा मिल ही जाएगा। उसने पिता की बात मान ली और जहर की पुड़िया लेकर ससुराल चली आई।

ससुराल आते ही अगले ही दिन से आरती ने सास के भोजन में एक चुटकी जहर रोजाना मिलाना शुरू कर दिया।

साथ ही उसके प्रति अपना बर्ताव भी बदल लिया। अब वह सास के किसी भी ताने का जवाब नहीं देती बल्कि क्रोध को पीकर मुस्कुराते हुए सुन लेती।

रोज उसके पैर दबाती और उसकी हर बात का ख्याल रखती।

सास से पूछ-पूछ कर उसकी पसंद का खाना बनाती, उसकी हर आज्ञा का पालन करती।

कुछ हफ्ते बीतते बीतते सास के स्वभाव में भी परिवर्तन आना शुरू हो गया. बहू की ओर से अपने तानों का प्रत्युत्तर न पाकर उसके ताने अब कम हो चले थे बल्कि वह कभी कभी बहू की सेवा के बदले आशीष भी देने लगी थी।

इसी ऊहापोह में एक दिन वह अपने पिता के घर दोबारा जा पहुंची और बोली-पिताजी, मुझे उस जहर के असर को खत्म करने की दवा दीजिये क्योंकि अब मैं अपनी सास को मारना नहीं चाहती!

धीरे-धीरे चार महीने बीत गए। आरती नियमित रूप से सास को रोज एक चुटकी जहर देती आ रही थी।

किन्तु उस घर का माहौल अब एकदम से बदल चुका था. सास बहू का झगड़ा पुरानी बात हो चुकी थी। पहले जो सास आरती को गालियाँ देते नहीं थकती थी, अब वही आस-पड़ोस वालों के आगे आरती की तारीफ़ों के पुल बाँधने लगी थी। बहू को साथ बिठाकर खाना खिलाती और सोने से पहले भी जब तक बहू से चार प्यार भरी बातें न कर ले, उसे नींद नही आती थी।

छठा महीना आते आते आरती को लगने लगा कि उसकी सास उसे बिलकुल अपनी बेटी की तरह मानने लगी हैं। उसे भी अपनी सास में माँ की छवि नजर आने लगी थी।

जब वह सोचती कि उसके दिए जहर से उसकी सास कुछ ही दिनों में मर जाएगी तो वह परेशान हो जाती थी।

इसी ऊहापोह में एक दिन वह अपने पिता के घर दोबारा जा पहुंची और बोली-पिताजी, मुझे उस जहर के असर को खत्म करने की दवा दीजिये क्योंकि अब मैं अपनी सास को मारना नहीं चाहती! वो बहुत अच्छी हैं और अब मैं उन्हें अपनी माँ की तरह चाहने लगी हूँ!

पिता ठठाकर हँस पड़े और बोले जहर ? कैसा जहर? मैंने तो तुम्हें जहर के नाम पर हाजमे का चूर्ण दिया था। हा हा हा !!! बेटी को सही रास्ता दिखाये, माँ बाप का पूर्ण फर्ज अदा करें। ❑

कर्मकाण्ड ही सब कुछ नहीं है

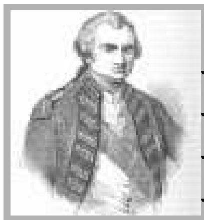

एक धनी व्यक्ति ने सुन रखा था कि भागवत पुराण सुनने से मुक्ति हो जाती है। राजा परीक्षित को इसी से मुक्ति हुई थी। उसने एक पंडित जी को भगवान की कथा सुनाने को कहा। कथा पूरी हो गई पर उस व्यक्ति के मुक्ति के कोई लक्षण नजर न आये। उसने पंडित जी से इसका कारण पूछा- पंडित जी ने लालच वश उत्तर दिया। यह कलियुग है इसमें चौथाई पुण्य होता है। चार बार कथा सुनो तो एक कथा की बराबर पुण्य होगा। धनी ने तीन कथा की दक्षिणा पेशगी दे दी और कथाएं आरम्भ करने को कहा। वे तीनों भी पूरी हो गई पर मुक्ति का कोई लक्षण तो भी प्रतीत न हुआ। इस पर कथा कहने और सुनने वाले में कहासुनी होने लगी। विवाद एक उच्च कोटि के महात्मा के पास पहुँचा। उसने दोनों को समझाया कि केवल बाह्य क्रिया से नहीं आन्तरिक स्थिति के आधार पर पुण्य फल मिलता है। राजा परीक्षित मृत्यु को निश्चित जान संसार से वैराग्य लेकर आत्म कल्याण में मन लगाकर कथा सुन रहा था। वीतराग शुकदेव जी भी पूर्ण निर्लोभ होकर परमार्थ की दृष्टि से कथा सुना रहे थे। दोनों की अन्तःस्थिति ऊँची थी इसलिए उन्हें वैसा ही फल मिला। तुम दोनों लोभ मोह में डूबे हो। जैसे कथा कहने वाले वैसे सुनने वाले, इसलिए तुम लोगों को पुण्य तो मिलेगा पर वह थोड़ा ही होगा। परीक्षित जैसी स्थिति न होने के कारण वैसे फल की भी तुम्हें आशा नहीं करनी चाहिए। आत्म कल्याण के लिए बाह्य कर्मकाण्ड से ही काम नहीं चलता। उसके लिए उच्च भावनायें होना भी आवश्यक है।

'भक्त वत्सल भगवान'

डॉ. अनिल त्रिपाठी

ताज खां नामक एक मुस्लिम राजस्थान के करौली नगर की कचहरी में चपरासी के रूप में नियुक्त थे।

एक बार वे कचहरी के काम से मदनमोहन मंदिर के पुजारी गोस्वामी जी के पास आए और मंदिर के बाहर खड़े होकर पुजारी जी को आवाज लगाने लगे। अचानक उनकी नजर मंदिर में स्थित भगवान श्री राधा मदनमोहन श्रीकृष्ण जी पर चली गई।

'भगवान श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य की एक झलक पाते ही उनका दिल उनका दीवाना बन बैठा। वे उनके मुख मंडल की और टकटकी लगाकर निहारते ही रह गए। जब पुजारी जी मंदिर से बाहर आए तो उनका धयान भंग हुआ और कचहरी का संदेश उन्हें देकर वे चले गए।'

ताज खां वहाँ से चले तो गए, लेकिन उनका दिल फिर से भगवान श्रीकृष्ण की उसी साँवली सलोनी छवि को देखने के लिए रह-रहकर मचलने लगा। न उन्हें दिन को चौन था और न रात को। उनके दिमाग में मदनमोहन जी की छवि बार-बार नाचने लगी।

अब ताज खां इस ताक में रहने लगे कि किसी न किसी तरह हर रोज इस सुंदर छबि के दर्शन किए जाएं।

मुस्लिम होने के कारण वे मंदिर में प्रवेश तो नहीं कर सकते थे, अतः वे मंदिर के बाहर मंडराते रहते और जब कोई निकट न होता तो मदनमोहनजी को निहारने लगते। 'लेकिन प्रेम लाख छिपाने पर भी भला छिपता कहाँ है? पुजारी जी को आखिर पता चल ही गया कि यह मुस्लिम छिप-छिपकर हमारे मदनमोहन जी का दर्शन करता है।'

एक बार वे कचहरी के काम से मदनमोहन मंदिर के पुजारी गोस्वामी जी के पास आए और मंदिर के बाहर खड़े होकर पुजारी जी को आवाज लगाने लगे। अचानक उनकी नजर मंदिर में स्थित भगवान श्री राधा मदनमोहन श्रीकृष्ण जी पर चली गई।

उन्होंने ताज खां को मंदिर आने से मना कर दिया। मना करने के बावजूद ताज खां का दिल न माना और वे भगवान के रूप की एक झाँकी देखने के लिए मंदिर पहुंच गए। किंतु मंदिर के एक कार्यकर्ता ने उन्हें वहाँ से ध ाक्का मार कर भगा दिया।

'ताज खां अगले दिन मंदिर नहीं गए, तो उनका दिल मदनमोहन जी को देखने के लिए तड़पने लगा। वे उन्हें याद कर-करके फूट-फूटकर रोने लगे। अपने दिल का हाल बताएं भी तो किसे बताएं? अन्न-जल त्यागकर मदन मोहन जी से ही दर्शन की प्रार्थना करने लगे। भक्त की करूण पुकार सुनकर भगवान का ह्रदय पसीज उठा।'

इथर मदनमोहन मंदिर में रात की आरती के बाद भगवान के सामने प्रसाद का थाल रखकर दरवाजा बाहर से बंद कर दिया गया।भगवान मदनमोहनजी ने मंदिर के कार्यकर्ता का रूप धाारण किया और प्रसाद का थाल लेकर अपने भक्त ताज खां के घर जा पहुंचे।

भगवान ने जब ताज खां के घर का दरवाजा खटखटाया, उस समय भी वे भगवन के दर्शन के लिए तड़प रहे थे। भगवान ने ताज खां के हाथ में थाल देकर कहा, पुजारी जी ने आपके लिए प्रसाद भेजा है। आप प्रसाद ग्रहण कर लें और सुबह थाल लेकर मंदिर में भगवान के दर्शन के लिए पधारें।

ताज खां को तो विश्वास ही नहीं हो पाया कि जिन पुजारी जी ने उन्हें मंदिर में बाहर से ही भगवान को निहारने से मना कर दिया था, उन्हीं ने उनके लिए इतनी आधी रात में प्रसाद का थाल भेजा है।

किंतु जब मंदिर के कार्यकर्ता का रूप धाारण किये हुए भगवान ने आग्रह किया तो उनकी बात मानकर ताज खां ने भावुक मन से प्रसाद ग्रहण कर लिया। इसके बाद भगवान वहाँ से चले गये। 'अब भगवान ने मंदिर के पुजारी जी को सपने में दर्शन देकर कहा, प्रसाद का थाल मैं ताज खां को दे आया हूँ। सुबह जब वे प्रसाद का थाल लेकर मंदिर में आएं तो उन्हें मेरे दर्शन से वंचित न करना।'

पुजारीजी ने सुबह उठकर देखा तो मंदिर में प्रसाद का थाल नहीं था। वे चकित हो उठे और दौड़े हुए वहाँ के महाराज के पास गये और उन्होंने सारी घटना कह सुनाई।

भगवान ने जब ताज खां के घर का दरवाजा खटखटाया, उस समय भी वे भगवन के दर्शन के लिए तड़प रहे थे। भगवान ने ताज खां के हाथ में थाल देकर कहा, पुजारी जी ने आपके लिए प्रसाद भेजा है। आप प्रसाद ग्रहण कर लें और सुबह थाल लेकर मंदिर में भगवान के दर्शन के लिए पधारें।

महाराज भी एक मुस्लिम पर भगवान की कृपा को देखकर भाव विभोर हो उठे। दोनों मंदिर में ताज खां की प्रतीक्षा करने लगे। जब ताज खां पूजा के समय हाथ में प्रसाद का थाल लिए मंदिर में घुसे तो सभी उपस्थित भक्तजन आश्चर्यचकित रह गए। महाराज दौड़कर आगे बढ़े और भगवान मदनमोहनजी के सच्चे भक्त ताज खां को गले से लगा लिया। जब सभी श्रद्धालुओं को इस घटना का पता चला तो वे भक्त ताज खां की जय-जयकार करने लगे। 'आज भी करौली के मदनमोहन मंदिर में जब शाम की आरती होती है, तो इस दोहे को गाकर भक्त ताज खां को याद किया जाता है।'

'ताज भक्त मुसलिम पै प्रभु तुम दया करी।'
'भोजन लै घर पहुंचे दीनदयाल हरी'

❑

खुशनसीब वह नहीं जो जिसका नसीब अच्छा है। बल्कि खुशनसीब वह है जो अपने नसीब से खुश है।

तत्वदर्शी सन्त की क्या पहचान है तथा प्रमाणित सद्ग्रन्थों में प्रमाण

कौशल पाण्डेय

तत्वदर्शी सन्त की क्या पहचान है तथा प्रमाणित सद्ग्रन्थों में कहाँ प्रमाण है? आपका ज्ञान आत्मा के आर-पार हो रहा है। गीता का शब्द-शब्द यथार्थ भावार्थ आप जी के मुख कमल से सुनकर युगों की प्यासी आत्मा कुछ तृप्त हो रही है, गद्गद् हो रही है।

लक्षण तत्वदर्शी सन्त अर्थात् पूर्ण ज्ञानी सतगुरु के- गुरू के लक्षण चार बखाना, प्रथम वेद शास्त्र को ज्ञाना (ज्ञाता)। दूजे हरि भक्ति मन कर्म बानी, तीसरे समदृष्टि कर जानी। चौथे वेद विधि सब कर्मा, यह चार गुरु गुण जानो मर्मा।

भावार्थः जो तत्वदर्शी सन्त (पूर्ण सतगुरु) होगा उसमें चार मुख्य गुण होते हैं-

1. वह वेदों तथा अन्य सभी ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञानी होता है।

2. दूसरे वह परमात्मा की भक्ति मन-कर्म-वचन से स्वयं करता है, केवल वक्ता-वक्ता नहीं होता, उसकी करणी और कथनी में अन्तर नहीं होता।

3. वह सर्व अनुयाईयों को समान दृष्टि से देखता है। ऊँच-नीच का भेद नहीं करता।

4. चौथे वह सर्व भक्तिकर्म वेदों के अनुसार करता तथा कराता है अर्थात् शास्त्रनुकूल भक्ति साधना करता तथा कराता है। यह ऊपर का प्रमाण तो सूक्ष्म वेद में है जो परमेश्वर ने अपने मुखकमल से बोला है। अब आप जी को श्रीमद्भगवत गीता में प्रमाण दिखाते हैं कि तत्वदर्शी सन्त की क्या पहचान बताई है?

श्रीमद्भागवत गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में स्पष्ट है:-

ऊर्धव मूलम् अधः शाखम् अश्वत्थम् प्राहुः अव्ययम।
छन्दासि यस्य प्रणानि, यः तम् वेद सः वेदवित् ॥

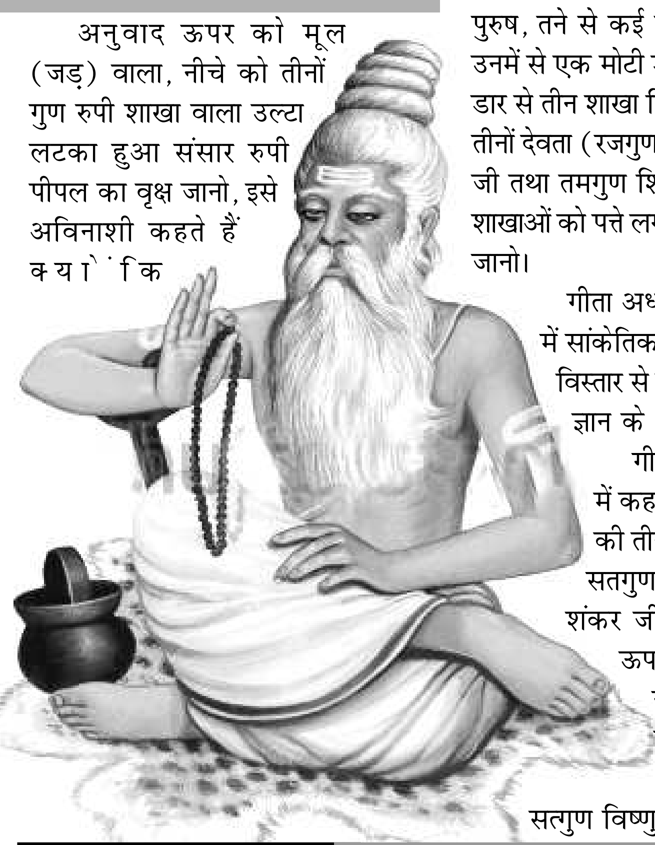

तत्वदर्शी सन्त की क्या पहचान है तथा प्रमाणित सद्ग्रन्थों में कहाँ प्रमाण है? आपका ज्ञान आत्मा के आर-पार हो रहा है। गीता का शब्दा-शब्द यथार्थ भावार्थ आप जी के मुख कमल से सुनकर युगों की प्यासी आत्मा कुछ तृप्त हो रही है, गद्गद् हो रही है।

अनुवाद ऊपर को मूल (जड़) वाला, नीचे को तीनों गुण रुपी शाखा वाला उल्टा लटका हुआ संसार रुपी पीपल का वृक्ष जानो, इसे अविनाशी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति-प्रलय चक्र सदा चलता रहता है जिस कारण से इसे अविनाशी कहा है। इस संसार रुपी वृक्ष के पत्ते आदि छन्द हैं अर्थात् भाग हैं। (तम् वेद) जो इस संसार रुपी वृक्ष के सर्वभागों को तत्व से जानता है, (सः) वह (वेदवित) वेद के तात्पर्य को जानने वाला है अर्थात् वह तत्वदर्शी सन्त है। जैसा कि गीता अध्याय 4 श्लोक 32 में कहा है कि परम अक्षर ब्रह्म स्वयं पृथ्वी पर प्रकट होकर अपने मुख कमल से तत्वज्ञान विस्तार से बोलते हैं। परमेश्वर ने अपनी वाणी में अर्थात् तत्वज्ञान में बताया है:- अक्षर पुरुष एक पेड़ है, क्षर पुरुष वाकि डार।
तीनों देवा शाखा हैं, पात रुप संसार।।

भावार्थः जमीन से बाहर जो वृक्ष का हिस्सा है, उसे तना कहते हैं। तना तो जानों अक्षर पुरुष, तने से कई मोटी डार निकलती हैं। उनमें से एक मोटी डार जानों क्षर पुरुष। उस डार से तीन शाखा निकलती हैं, उनको जानों तीनों देवता (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव-शंकर ज) और इन शाखाओं को पत्ते लगते हैं, उन पत्तों को संसार जानो।

गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में सांकेतिक विवरण है। तत्वज्ञान में विस्तार से कहा गया है। पहले गीता ज्ञान के आधार से ही जानते हैं। गीता अध्याय 15 श्लोक 2 में कहते हैं कि संसार रुपी वृक्ष की तीनों गुण (रजगुण ब्रह्माजी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शंकर जी) रुपी शाखाएं हैं। ये ऊपर (स्वर्ग लोक में) तथा नीचे (पाताल लोक) फैली हुई हैं।

नोटः रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शंकर हैं। देखें प्रमाण प्रश्न नं. 5 में। तीनों शाखाएं ऊपर-नीचे फैली हैं, का तात्पर्य है कि गीता का ज्ञान पृथ्वी लोक पर बोला जा रहा था। तीनों देवता की सत्ता तीन लोकों में है। 1. पृथ्वी लोक, 2. स्वर्ग लोक तथा 3. पाताल लोक। ये तीन मन्त्री हैं, एक-एक विभाग के मन्त्री हैं। रजगुण विभाग के श्री ब्रह्मा जी, सतगुण विभाग के श्री विष्णु जी तथा तमगुण विभाग के श्री शिव जी। गीता अध्याय 15 श्लोक 3 में कहा है कि हे अर्जुन! इस संसार रुपी वृक्ष का स्वरुप जैसे

यहाँ (विचार काल में) अर्थात् तेरे और मेरे गीता के ज्ञान की चर्चा में नहीं पाया जाता अर्थात् मैं नहीं बता पाऊँगा क्योंकि इसके आदि और अन्त का मुझे अच्छी तरह ज्ञान नहीं है। इसलिए इस अतिदृढ़ मूल वाले अर्थात् जिस संसार रुपी वृक्ष की मूल है, वह परमात्मा भी अविनाशी है तथा उनका स्थान सत्यलोक, अलख लोक, अगम लोक तथा अकह लोक, ये चार ऊपर के लोक भी अविनाशी हैं। इन चारों में एक ही परमात्मा भिन्न-भिन्न रुप बनाकर सिंहासन पर विराजमान हैं। इसलिए इसको ''सुदृढ़मूलम' अति दृढ़ मूल वाला कहा है, इसे तत्वज्ञान रुपी शस्त्र से काटकर अर्थात् तत्वदर्शी सन्त से तत्वज्ञान समझकर।

फिर गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि उसके पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद अर्थात् सत्यलोक की खोज करनी

चाहिए, जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आते। जिस परमेश्वर से संसार रुपी वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है अर्थात् जिस परमेश्वर ने सर्व संसार की रचना की है। उसी परमेश्वर की भक्ति को पहले तत्वदर्शी सन्त से समझो! गीता ज्ञान दाता अपनी भक्ति को भी मना कर रहा है। गीता अधयाय 15 श्लोक 16-17 में तीन प्रभु बताये हैं। क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष ये दोनों नाशवान हैं। तीसरा परम अक्षर पुरुष है जो संसार रुपी वृक्ष का मूल (जड़) है। वह वास्तव में अविनाशी है। जड़ (मूल) से ही वृक्ष के सर्व भागों ''तना, डार-शाखाओं तथा पत्तों को आहार प्राप्त होता है। वह परम अक्षर पुरुष ही तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। उसी (मूल) मालिक की पूजा करनी चाहिए। इस विवरण में तत्वदर्शी सन्त की पहचान तथा गीता ज्ञान दाता की अल्पज्ञता अर्थात् तत्वज्ञानहीनता स्पष्ट है। ❑

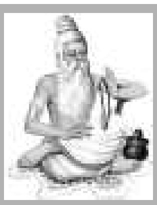

प्रारब्ध

एक गुरूजी थे। हमेशा ईश्वर के नाम का जाप किया करते थे। काफी बुजुर्ग हो गये थे। उनके कुछ शिष्य साथ मे ही पास के कमरे मे रहते थे। जब भी गुरूजी को शौच स्नान आदि के लिये जाना होता था। वे अपने शिष्यों को आवाज लगाते थे और शिष्य ले जाते थे। धीरे-धीरे कुछ दिन बाद शिष्य दो तीन बार आवाज लगाने के बाद भी कभी आते कभी और भी देर से आते। एक दिन रात को निवृत्त होने के लिये जैसे ही गुरूजी आवाज लगाते हैं, तुरन्त एक बालक आता है और बड़े ही कोमल स्पर्श के साथ गुरूजी को निवृत्त करवा कर बिस्तर पर लेटा जाता है। अब ये रोज का नियम हो गया। एक दिन गुरूजी को शक हो जाता है कि, पहले तो शिष्यों को तीन चार बार आवाज लगाने पर भी देर से आते थे। लेकिन ये बालक तो आवाज लगाते ही दूसरे क्षण आ जाता है और बड़े कोमल स्पर्श से सब निवृत्त करवा देता है। एक दिन गुरूजी उस बालक का हाथ पकड लेते हैं और पूछते हैं कि सच बता तू कौन है? मेरे शिष्य तो ऐसे नही हैं। वो बालक के रूप में स्वयं ईश्वर थे उन्होंने गुरूजी को स्वयं का वास्तविक रूप दिखाया। गुरूजी रोते हुये कहते है: हे प्रभु आप स्वयं मेरे निवृत्ती के कार्य कर रहे है। यदि मुझसे इतने प्रसन्न हो तो मुक्ति ही दे दो न। प्रभु कहते हैं कि जो आप भुगत रहे है वो आपके प्रारब्ध है। आप मेरे सच्चे साधक है हर समय मेरा नाम जप करते हैं इसलिये मै आपके प्रारब्ध भी आपकी सच्ची साधना के कारण स्वयं कटवा रहा हूँ। गुरूजी कहते है कि क्या मेरे प्रारब्ध आपकी कृपा से भी बडे है क्या आपकी कृपा, मेरे प्रारब्ध नही काट सकती है। प्रभु कहते है कि, मेरी कृपा सर्वोपरि है। ये अवश्य आपके प्रारब्ध काट सकती है लेकिन फिर अगले जन्म में आपको ये प्रारब्ध भुगतने फिर से आना होगा। यही कर्म नियम है। इसलिए आपके प्रारब्ध स्वयं अपने हाथों से कटवा कर इस जन्म-मरण से आपको मुक्ति देना चाहता हूँ। ईश्वर कहते हैं: प्रारब्ध तीन तरह के होते है: मन्द ,तीव्र, तथा तीव्रतम मन्द प्रारब्ध मेरा नाम जपने से कट जाते है। तीव्र प्रारब्ध किसी सच्चे संत का संग करके श्रद्धा और विश्वास से मेरा नाम जपने पर कट जाते है। पर तीव्रतम प्रारब्ध भुगतने ही पड़ते है। लेकिन जो हर समय श्रद्धा और विश्वास से मुझे जपते हैं उनके प्रारब्ध मैं स्वयं साथ रहकर कटवाता हूँ और तीव्रता का अहसास नहीं होने देता हूँ। प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा शरीर। तुलसी चिन्ता क्यों करे, भज ले श्री रघुबीर॥

कल्याण मन्दिर का प्रवेश द्वार

अशोक गुप्ता

तीन दीक्षाओं से तीन वर्णों मे प्रवेश मिलता है। दीक्षा का अर्थ है- विधिवत, व्यवस्थित कार्यक्रम और निश्चित श्रद्धा। यों कोई विद्यार्थी नियत कोर्स न पढ़कर, नियत कक्षा में न बैठकर कभी कोई, कभी कोई पुस्तक पढ़ता रहे, तो भी धीरे-धीरे उसका ज्ञान बढ़ता ही रहेगा और क्रमशः उसके ज्ञान में उन्नति होती ही जायेगी। सम्भव है वह अव्यवस्थित क्रम से ग्रेजुएट हो जाय, पर यह मार्ग है कष्टसाध्य और लम्बा। कमशः एक-एक कक्षा पार करते हुए, एक-एक कोर्स पूरा करते हुए निर्धारित क्रम से यदि पढ़ाई जारी रखी जाए, तो अध्यापक को भी सुविधा रहती है और विद्यार्थी को भी।

यदि कोई विद्यार्थी आज कक्षा 7 की, कल कक्षा 12 की, आज संगीत की, कल डॉक्टरी की पुस्तकों को पढ़े तो उसे याद करने में और शिक्षक को पढ़ाने में असुविधा होगी। इसलिए ऋषियों ने आत्मोन्नति की तीन भूमिकायें निर्धारित कर दी हैं, द्विजत्व को तीन भागों में बाँट दिया है। क्रमशः एक-एक कक्षा में प्रवेश करना और नियम, प्रतिबन्ध, आदेश एवं अनुशासन को श्रद्धापूर्वक मानना, इसी का नाम दीक्षा है। तीन कक्षाओं को उत्तीर्ण करने के लिए तीन बार भर्ती होना पड़ता है। कई जगह एक ही अधयापक तीन कक्षाओं को पढ़ाते हैं, कई जगह हर कक्षा के लिए अलग-अलग अध्यापक होते हैं। कई बार तो स्कूल ही बदलने पड़ते हैं। प्राइमरी स्कूल उत्तीर्ण करके हाईस्कूल में भर्ती होना पड़ता है और हाईस्कूल, इण्टर पास करके कॉलेज में नाम लिखाना पड़ता है। तीन विद्यालयों की पढ़ाई पूरी करने पर एम.ए. की पूर्णता प्राप्त होती है।

इन तीन कक्षाओं के अध्यापकों की योग्यता भिन्न-भिन्न होती है। प्रथम कक्षा में सद्विचार और सत् आचार सिखाया जाता है। इसके लिए कथा, प्रवचन, सत्संग, भाषण, पुस्तक, प्रचार, शिक्षण, सलाह, तर्क आदि साधन काम में लाये जाते हैं। इनके द्वारा मनुष्य की विचार भूमिका का सुधार होता है, कुविचारों के स्थान पर सद्विचार स्थापित होते हैं, जिनके कारण साधक अनेक शूलों और क्लेशों से बचता हुआ सुख शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत कर लेता है। इस प्रथम कक्षा के विद्यार्थी को गुरु के प्रति श्रद्धा रखना आवश्यक है। श्रद्धा न होगी तो उनके वचनों का, उपदेशों का न तो महत्त्व समझ में आयेगा और न उन पर विश्वास होगा। प्रत्यक्ष है कि उस ी बात को कोई महापुरुष कहे तो लोग उसे बहुत महत्त्वपूर्ण समझते हैं और उसी बात को यदि तुच्छ मनुष्य कहे, तो कोई कान नहीं देता। दोनों ने एक ही बात कही, पर एक के कहने पर उपेक्षा की गई, दूसरे के कहने पर ध्यान दिया गया। इसमें कहने वाले के ऊपर सुनने वालों की श्रद्धा या अश्रद्धा का होना ही प्रधान कारण है। किसी व्यक्ति पर विशेष श्रद्धा हो, तो उसकी साधारण बातें भी असाधारण प्रतीत होती हैं। श्रद्धा में अपरिमित शक्ति होती है और जिस किसी में यह पर्याप्त मात्र में होगी, उसे जीवन में सफलता प्राप्त होना निश्चित है।

रोज सैकड़ों कथा, प्रवचन, व्याख्यान होते हैं। अखबारों में, पर्चों, पोस्टरों में तरह-तरह की बातें सुनाई जाती हैं, रेडियो से नित्य ही उपदेश सुनाये जाते हैं, पर उन पर कोई कान नहीं देता। कारण यही है कि सुनने वालों को सुनाने वालों के प्रति व्यक्तिगत श्रद्धा नहीं होती, इसलिए ये महत्त्वपूर्ण बातें भी निरर्थक एवं उपेक्षणीय मालूम देती हैं। कोई उपदेश तभी प्रभावशाली हो सकता है जब उसका देने वाला, सुनने वालों का श्रद्धास्पद हो। वह श्रद्धा जितनी ही तीव्र होगी, उतना ही अधिाक उसका प्रभाव पड़ेगा। प्रथम कक्षा के मन्त्र दीक्षित, गायत्री का समुचित लाभ उठा सकें, इस दृष्टि से साधक को, दीक्षित को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वह गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा रखेगा। उसे वह देवतुल्य या परमात्मा का प्रतीक मानेगा। इसमें कुछ विचित्रता भी नहीं है। श्रद्धा के कारण जब मिट्टी, पत्थर और धातु की मूर्तियाँ हमारे लिए देव बन जाती हैं तो कोई कारण नहीं कि एक जीवित मनुष्य में देवत्व का आरोपण करके अपनी श्रद्धानुसार उसे अपने लिए देव न बना लिया जाए। ❑

तीन दीक्षाओं से तीन वर्णों मे प्रवेश मिलता है। दीक्षा का अर्थ है- विधिवत, व्यवस्थित कार्यक्रम और निश्चित श्रद्धा। यों कोई विद्यार्थी नियत कोर्स न पढ़कर, नियत कक्षा में न बैठकर कभी कोई, कभी कोई पुस्तक पढ़ता रहे, तो भी धीरे-धीरे उसका ज्ञान बढ़ता ही रहेगा और क्रमशः उसके ज्ञान में उन्नति होती ही जायेगी।

अविनाशी परमात्मा कौन है

रामपाल

परमात्मा को अजन्मा, अजर-अमर कहते हैं। प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि श्री ब्रह्मा श्री विष्णु तथा श्री शंकर तीनों नाशवान हैं, फिर अविनाशी परमात्मा कौन है, क्या ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर और काल ब्रह्म परमात्मा नहीं हैं? प्रमाण सहित बताएं-

पहले स्पष्ट करते हैं कि श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री शंकर तथा ब्रह्म परमात्मा है या नहीं। यह तो आपने अपने प्रश्न में ही सिद्ध कर दिया कि परमात्मा तो अजन्मा अर्थात् जिसका कभी जन्म न हुआ हो, वह होता है, पूर्वोक्त विवरण तथा प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के माता-पिता हैं। ब्रह्म भी नाशवान है, इसका भी जन्म हुआ है, इससे स्वसिद्ध हुआ कि ये परमात्मा नहीं हैं। अब प्रश्न रहा फिर अविनाशी कौन है? इसके उत्तर में श्रीमद्भगवत गीता से ही प्रमाणित करते हैं कि अविनाशी परमात्मा गीता ज्ञान देने वाले (ब्रह्म) से अन्य है।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 2 श्लोक 12, गीता अध्याय 4 श्लोक 5, गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी कि मेरी उत्पत्ति हुई है, मैं जन्मता-मरता हूँ, अर्जुन मेरे और तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, मैं भी नाशवान हूँ। गीता अधयाय 2 श्लोक 17 में भी कहा है कि अविनाशी तो उसको जान जिसको मारने में कोई भी सक्षम नहीं है और जिस परमात्मा ने सर्व की रचना की है, अविनाशी परमात्मा का यह प्रथम प्रमाण हुआ।

प्रमाण नं. 2 श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में तीन पुरूष (प्रभु) कहे हैं। गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में कहा है कि इस लोक में दो पुरूष प्रसिद्ध हैं-क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष। ये दोनों प्रभु तथा इनके अन्तर्गत सर्व प्राणी नाशवान हैं, आत्मा तो सबकी अमर है। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि उत्तम पुरूष अर्थात् पुरूषोत्तम तो कोई अन्य ही है, जिसे परमात्मा कहा गया है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है, वह वास्तव में अविनाशी है।

गीता अध्याय 7 श्लोक 29 में कहा है कि जो साधाक केवल जरा (वृद्धावस्था), मरण (मृत्यु), दु:ख से छूटने के लिए प्रयत्न करते हैं। वे तत् ब्रह्म को जानते हैं, सब कर्मो तथा सम्पूर्ण अध्यात्म से परिचित हैं। गीता अध्याय 8 श्लोक 1 में अर्जुन ने पूछा कि 'तत् ब्रह्म' क्या है? गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 8 श्लोक 3 में उत्तर दिया कि वह 'परम अक्षर ब्रह्म'' है अर्थात् परम अक्षर पुरूष है। (पुरूष कहो चाहे ब्रह्म) गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में जो ''उत्तम पुरूष: तु अन्य: परमात्मा इति उदाहृत:'' कहा है, वह 'परम अक्षर ब्रह्म' है, इसी को पुरूषोत्तम कहा है।

शंका समाधान

गीता अध्याय 15 श्लोक 18 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मैं उन सर्व प्राणियों से उत्तम अर्थात् शक्तिमान हूँ जो मेरे 21 ब्रह्माण्डों में रहते हैं, इसलिए लोकवेद अर्थात् दन्त कथा के आधार से मैं पुरूषोत्तम प्रसिद्ध हूँ। वास्तव में पुरूषोत्तम तो गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में स्पष्ट कर दिया। उत्तम पुरूष अर्थात् पुरूषोत्तम तो क्षर पुरूष (गीता ज्ञान दाता) तथा अक्षर पुरूष (जो 7 संख ब्रह्माण्डों का स्वामी है) से अन्य ही है, वही परमात्मा कहा जाता है। वह सर्व का धारण-पोषण करता है, वास्तव में अविनाशी है। वह 'परम अक्षर ब्रह्म' है जो असंख्य ब्रह्माण्डों का मालिक है जो सर्व सृजनहार है, कुल का मालिक है अर्थात् परमात्मा है।

गीता का ज्ञान कब तथा किसने, किसको सुनाया, किसने लिखा?

रामपाल

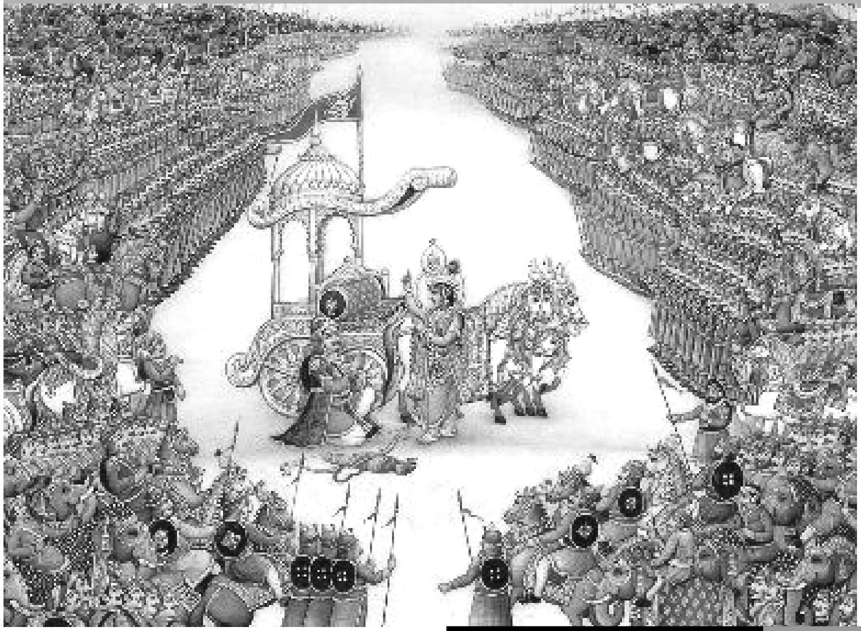

श्रीमद्भागवत् गीता का ज्ञान श्रीकृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके काल भगवान ने (जिसे वेदों व गीता में 'ब्रह्म' नाम से भी जाना जाता है) अर्जुन को सुनाया। जिस समय कौरव तथा पाण्डव अपनी सम्पत्ति अर्थात् दिल्ली के राज्य पर अपने-अपने हक का दावा करके युद्ध करने के लिए तैयार हो गए थे, दोनों की सेनाएं आमने-सामने कुरूक्षेत्र के मैदान में खड़ी थी। अर्जुन ने देखा कि सामने वाली सेना में भीष्म पितामह, गुरू द्रोणाचार्य, रिश्तेदार, कौरवों के बच्चे, दामाद, बहनोई, ससुर आदि-आदि लड़ने-मरने के लिए खड़े हैं। कौरव और पाण्डव आपस में चचेरे भाई थे। अर्जुन में साधु भाव जागृत हो गया तथा विचार किया कि जिस राज्य को प्राप्त करने के लिए हमें अपने चचेरे भाईयों, भतीजों, दामादों, बहनोइयों, भीष्मपिता जी तथा गुरूजनों को मारेंगे। यह भी नहीं पता कि हम कितने दिन संसार में रहेंगे? इसलिए इस प्रकार से प्राप्त राज्य के भोग से अच्छा तो हम भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह कर लेंगे, परन्तु युद्ध नहीं करेंगे। यह विचार करके अर्जुन ने धनुष-बाण हाथ से छोड़ दिया तथा रथ के पिछले भाग में बैठ गया। अर्जुन की ऐसी दशा देखकर श्रीकृष्ण बोले:- देख ले सामने किस योद्धा से आपने लड़ना है। अर्जुन ने उत्तर दिया कि हे श्रीकृष्ण! मैं किसी कीमत पर भी युद्ध नहीं करूँगा। अपने उद्देश्य तथा जो विचार मन में उठ रहे थे, उनसे भी अवगत कराया। उसी समय श्रीकृष्ण जी में काल-भगवान प्रवेश कर गया जैसे प्रेत किसी अन्य व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करके बोलता है। ऐसे काल ने श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करके श्रीमद्भागवत गीता का ज्ञान युद्ध करने की प्रेरणा करने के लिए तथा कलयुग में वेदों को जानने वाले व्यक्ति नहीं रहेंगे, इसलिए चारों वेदों का संक्षिप्त वर्णन व सारांश 'गीता ज्ञान' रूप में 18 अध्यायों में 700 श्लोकों में सुनाया। श्रीकृष्ण को तो पता नहीं था कि मैंने क्या बोला था गीता ज्ञान में?

श्रीकृष्ण जी में काल भगवान प्रवेश कर गया जैसे प्रेत किसी अन्य व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करके बोलता है। ऐसे काल ने श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करके श्रीमद्भागवत गीता का ज्ञान युद्ध करने की प्रेरणा करने के लिए तथा कलयुग में वेदों को जानने वाले व्यक्ति नहीं रहेंगे, इसलिए चारों वेदों का संक्षिप्त वर्णन व सारांश 'गीता ज्ञान' रूप में 18 अध्यायों में 700 श्लोकों में सुनाया।

कुछ वर्षों के बाद वेदव्यास ऋषि ने इस अमृतज्ञान को संस्कृत भाषा में देवनागरी लिपि में लिखा। बाद में अनुवादकों ने अपनी बुद्धि के अनुसार इस पवित्र ग्रन्थ का हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जो वर्तमान में गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रश्न आज सन् 2012 तक तो यह सुनने में आया है कि गीता जी का ज्ञान श्रीकृष्ण ने बोला। आपने बताया कि श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करके काल ने गीता ज्ञान कहा और श्रीकृष्ण को तो पता ही नहीं था कि उन्होंने क्या ज्ञान कहा था? यह असत्य प्रतीत होता है, कोई प्रमाण बताएं। आपको ढेर सारे प्रमाण देते हैं, जिनसे स्वसिद्ध हो जाता है कि गीता शास्त्र का ज्ञान 'काल' ने कहा। सर्व प्रथम गीता से ही प्रमाणित करता हूँ।

करूँगा। विपक्ष की सर्व सेना, तू युद्ध नहीं करेगा तो भी नष्ट हो जाएगी। इससे सिद्ध हुआ कि गीता का ज्ञान काल ने कहा है। श्रीकृष्ण जी के शरीर में प्रविष्ट होकर श्रीकृष्ण जी ने कभी नहीं कहा कि मैं काल हूँ। श्रीकृष्ण जी को देखकर कोई भयभीत नहीं होता था। गोप-गोपियाँ, ग्वाल-बाल, पशु-पक्षी सब दर्शन करके आनन्दित होते थे। तो क्या श्रीकृष्ण जी काल थे? नहीं। इसलिए गीता ज्ञान दाता काल है जिसने श्रीकृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके गीता शास्त्र का ज्ञान दिया।

प्रमाण नं. 3 गीता अध्याय 11 श्लोक 47 में गीता ज्ञानदाता ने कहा कि हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर अपनी शक्ति से तेरी दिव्य दृष्टि खोलकर यह विराट रूप दिखाया है। यह विराट रूप तेरे अलावा पहले किसी ने नहीं देखा है।

गीता ज्ञान दाता ने जिस समय अपना भयँकर विराट रूप दिखाया जो हजार भुजाओं वाला था। तब अर्जुन ने पूछा (गीता अध्याय 11 श्लोक 31) कि हे देव! आप कौन हैं? हे सहंस्राबाहु (हजार भुजा वाले) आप अपने चतुर्भुज रूप में दर्शन दीजिए (क्योंकि अर्जुन उन्हें विष्णु अवतार कृष्ण तो मानता ही था, परन्तु उस समय श्री कृष्ण के शरीर से बाहर निकलकर काल ने अपना अपार विराट रूप दिखाया था

प्रमाण नं. 1- गीता अध्याय 10 में जब गीता ज्ञान दाता ने अपना विराट रूप दिखा दिया तो उसको देखकर अर्जुन काँपने लगा, भयभीत हो गया। यहाँ पर यह बताना भी अनिवार्य है कि अर्जुन का साला श्री कृष्ण था क्योंकि श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हुआ था।

गीता ज्ञान दाता ने जिस समय अपना भयंकर विराट रूप दिखाया जो हजार भुजाओं वाला था। तब अर्जुन ने पूछा (गीता अध्याय 11 श्लोक 31) कि हे देव! आप कौन हैं? हे सहस्राबाहु (हजार भुजा वाले) आप अपने चतुर्भुज रूप में दर्शन दीजिए (क्योंकि अर्जुन उन्हें विष्णु अवतार कृष्ण तो मानता ही था, परन्तु उस समय श्री कृष्ण के शरीर से बाहर निकलकर काल ने अपना अपार विराट रूप दिखाया था) मैं भयभीत हूँ, आपके इस रूप को सहन नहीं कर पा रहा हूँ। (गीता अध्याय 11 श्लोक 46)

विचारें क्या हम अपने साले से पूछेंगे कि हे महानुभव! बताईए आप कौन हैं? नहीं। एक समय एक व्यक्ति में प्रेत बोलने लगा। साथ बैठे भाई ने पूछा आप कौन बोल रहे हो? उत्तर मिला कि तेरा मामा बोल रहा हूँ। मैं दुर्घटना में मरा था। क्या हम अपने भाई को नहीं जानते? ठीक इसी प्रकार श्री कृष्ण में काल बोल रहा था।

प्रमाण नं. 2 गीता अध्याय 11 श्लोक 21 में अर्जुन ने कहा कि आप तो देवताओं के समूह के समूह को ग्रस (खा) रहे हैं जो आपकी स्तुति हाथ जोड़कर भयभीत होकर कर रहे हैं। महर्षियों तथा सिद्धों के समुदाय आप से अपने जीवन की रक्षार्थ मंगल कामना कर रहे हैं। गीता अध्याय 11 श्लोक 32 में गीता ज्ञान दाता ने बताया कि हे अर्जुन! मैं बढ़ा हुआ काल हूँ। अब प्रवर्त हुआ हूँ अर्थात् श्रीकृष्ण के शरीर में अब प्रवेश हुआ हूँ। सर्व व्यक्तियों का नाश

विचारणीय विषय महाभारत ग्रन्थ में प्रकरण आता है कि जिस समय श्रीकृष्ण जी कौरवों की सभा में उपस्थित थे और उनसे कह रहे थे कि आप दोनों (कौरव और पाण्डव) आपस में बातचीत करके अपनी सम्पत्ति (राज्य) का बटँवारा कर लो, युद्ध करना शोभा नहीं देता। पाण्डवों ने कहा कि हमें पाँच गाँव दे दो, हम उन्हीं से निर्वाह कर लेंगे। दुर्योधन ने यह भी माँग नहीं मानी और कहा कि पाण्डवों के लिए सुई की नोक के समान भी राज्य नहीं है, युद्ध करके ले सकते हैं। इस बात से श्रीकृष्ण भगवान बहुत क्षुब्ध हो गए तथा दुर्योधन से कहा कि तू पृथ्वी के नाश के लिए जन्मा है, कुलनाश करके टिकेगा। भले मानव! कहाँ आधा, राज्य

कहाँ 5 गाँव। कुछ तो शर्म कर ले।

इतनी बात श्रीकृष्ण जी के मुख से सुनकर दुर्योधन राजा आग-बबूला हो गया और सभा में उपस्थित अपने भाईयों तथा मन्त्रियों से बोला कि इस कृष्ण यादव को गिरफ्तार कर लो। उसी समय श्रीकृष्णजी ने विराट रूप दिखाया। सभा में उपस्थित सर्व सभासद उस विराट रूप को देखकर भयभीत होकर कुर्सियों के नीचे छिप गए, कुछ आँखों पर हाथ रखकर जमीन पर गिर गए। श्रीकृष्ण जी सभा छोड़ कर चले गए तथा अपना विराट रूप समाप्त कर दिया।

अब उस बात पर विचार करते हैं जो गीता अध्याय 11 श्लोक 47 में गीता ज्ञान दाता ने कहा था कि यह मेरा विराट रूप

श्रीकृष्ण जी के मुख से सुनकर दुर्योधन राजा आग-बबूला हो गया और सभा में उपस्थित अपने भाईयों तथा मन्त्रियों से बोला कि इस कृष्ण यादव को गिरफ्तार कर लो। उसी समय श्रीकृष्णजी ने विराट रूप दिखाया। सभा में उपस्थित सर्व सभासद उस विराट रूप को देखकर भयभीत होकर कुर्सियों के नीचे छिप गए, कुछ आँखों पर हाथ रखकर जमीन पर गिर गए।

तेरे अतिरिक्त अर्जुन! पहले किसी ने नहीं देखा था। यदि श्रीकृष्ण गीता ज्ञान बोल रहे होते तो यह कभी नहीं कहते कि मेरा विराट रूप तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा था क्योंकि श्रीकृष्ण जी के विराट रूप को कौरव तथा अन्य सभासद पहले देख चुके थे। इससे सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भगवत गीता का ज्ञान श्रीकृष्ण ने नहीं कहा, उनके शरीर में प्रेतवत प्रवेश करके काल (क्षर पुरूष) ने कहा था। यह तीसरा प्रमाण हुआ।

प्रमाण नं. 4 श्री विष्णु पुराण (गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित) के पृष्ठ 233 पर प्रमाण है कि एक समय देवताओं और राक्षसों का युद्ध हुआ। देवता पराजित होकर समुद्र के किनारे जाकर छिप गए। फिर भगवान की तपस्या स्तुति करने लगे। काल का विधान है अर्थात् काल ने प्रतिज्ञा कर रखी है कि मैं अपने वास्तविक काल रूप में कभी किसी को दर्शन नहीं दूंगा। अपनी योग माया से छिपा रहूँगा। (प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में) इसलिए यह काल (क्षर पुरूष) किसी को विष्णु जी के रूप में दर्शन देता है, किसी को शंकर जी के रूप में, किसी को ब्रह्मा जी के रूप में दर्शन देता है। देवताओं को श्री विष्णु जी के रूप में दर्शन देकर कहा कि मैंने जो आप की समस्या है, वह जान ली है। आप पुरंज्य राजा को युद्ध के लिए तैयार कर लो। मैं उस राजा श्रेष्ठ के शरीर में प्रविष्ट होकर राक्षसों का नाश कर दूंगा, ऐसा ही किया गया। अधिक ज्ञान के लिए आप विष्णु पुराण पढ़ सकते हैं।

प्रमाण नं. 5 श्रीविष्णु पुराण के पृष्ठ 243 पर प्रमाण है कि एक समय नागवंशियों तथा गंधर्वों का युद्ध हुआ। गंधर्वों ने नागों के सर्व बहुमूल्य हीरे, लाल व खजाने लूट लिए, उनके राज्य पर भी कब्जा कर लिया। नागाओं ने भगवान की स्तुति की, वही काल भगवान विष्णु रूप धारण करके प्रकट हुआ। कहा कि आप पुरूकुत्स राजा को गंधर्वों के साथ युद्ध के लिए तैयार कर लें। मैं राजा पुरूकुत्स के शरीर में प्रवेश करके दुष्ट गंधर्वों का नाश कर दूँगा, ऐसा ही हुआ। उपरोक्त विष्णु पुराण की दोनों कथाओं से स्पष्ट हुआ (प्रमाणित हुआ) कि यह काल भगवान (क्षर पुरूष) इस प्रकार अव्यक्त (गुप्त) रहकर कार्य करता है। इसी प्रकार इसने श्रीकृष्ण जी में प्रवेश करके गीता का ज्ञान कहा है।

प्रमाण नं. 6 महाभारत ग्रन्थ में (गीता प्रैस गोरखपुर) से प्रकाशित में भाग-2 पृष्ठ 667 पर लिखा है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् राजा युधिष्ठर को राजगद्दी पर बैठाकर श्रीकृष्ण जी ने द्वारिका जाने की तैयारी की। तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि आप वह गीता वाला ज्ञान फिर से सुनाओ, मैं उस ज्ञान को भूल गया हूँ। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे अर्जुन! आप बड़े बुद्धिहीन हो, बड़े श्रद्धाहीन हो। आपने उस अनमोल ज्ञान को क्यों भुला दिया, अब मैं उस ज्ञान को नहीं सुना सकता क्योंकि मैंने उस समय योगयुक्त होकर गीता का ज्ञान सुनाया था।

विचार करें:-युद्ध के समय योगयुक्त हुआ जा सकता है तो शान्त वातावरण में योगयुक्त होने में क्या समस्या हो सकती है? वास्तव में यह ज्ञान काल ने श्रीकृष्ण में प्रवेश करके बोला था। श्री कृष्ण जी को स्वयं तो वह गीता ज्ञान याद नहीं, यदि वे वक्ता थे तो वक्ता को तो सर्व ज्ञान याद होना चाहिए। श्रोता को तो प्रथम बार में 40 प्रतिशत (चालीस प्रतिशत) ज्ञान याद रहता है। इससे सिद्ध है कि गीता का ज्ञान श्रीकृष्ण जी में प्रवेश होकर काल (क्षर पुरूष) ने बोला था। उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट हुआ कि श्रीमद्भभागवत गीता का ज्ञान श्रीकृष्ण ने नहीं कहा। उनको तो पता ही नहीं कि क्या कहा था, श्रीकृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके काल पुरूष (क्षर पुरूष) ने बोला था। ❑

परिवार वह सुरक्षा कवच है, जिसमें रहकर व्यक्ति शांति का अनुभव करता है।

तपस्वी की गुरु दक्षिणा

प्रो. वीरेन्द्र अग्रवाल

गीली लकड़ी को केवल धूप में सुखाया जा सकता है। उसे थोड़ी सी गर्मी पहुँचाई जाती है। धीरे-धीरे उसकी नमी सुखाई जाती है। जब वह भली प्रकार सुख जाती है, तो अग्नि में देकर मामूली लकड़ी को महाशक्तिशालिनी प्रचण्ड अग्नि के रूप मे परिणत कर दिया जाता है। गीली लकड़ी को चूल्हे में दिया जाए, तो उसका परिणाम अच्छा न होगा। प्रथम कक्षा के साधक पर केवल गुरु की श्रद्धा की जिम्मेदारी है और दृष्टिकोण को सुधार कर अपना प्रत्यक्ष जीवन सुधारना होता है। यह सब प्रारम्भिक छात्र के उपयुक्त है। यदि आरम्भ में तीव्र साधना में नये साधक को फँसा दिया जाय तो वह बुझ जायेगा, तप की कठिनाई देखकर वह डर जायेगा और प्रयत्न छोड़ बैठेगा। दूसरी कक्षा का छात्र चूँकि धूप में सूख चुका है, इसलिए उसे कोई विशेष कठिनाई मालूम नहीं देती, वह हँसते-हँसते साधना के श्रम का बोझ उठा लेता है।

अग्नि-दीक्षा के साधक को तपाने के लिए कई प्रकार के संयम, व्रत, नियम, त्याग आदि करने-कराने होते हैं। प्राचीन काल में उद्दालक, धौम्य, आरुणि, उपमन्यु, कच, श्लीमुख, जरुत्कार, हरिश्चन्द्र, दशरथ, नचिकेता, शेष, विरोचन, जाबालि, सुमनस, अम्बरीष, दिलीप आदि अनेक शिष्यों ने अपने गुरुओं के आदेशानुसार अनेक कष्ट सहे और उनके बताये हुए

गीली लकड़ी को केवल धूप में सुखाया जा सकता है। उसे थोड़ी सी गर्मी पहुँचाई जाती है। धीरे-धीरे उसकी नमी सुखाई जाती है। जब वह भली प्रकार सुख जाती है, तो अग्नि में देकर मामूली लकड़ी को महाशक्तिशालिनी प्रचण्ड अग्नि के रूप मे परिणत कर दिया जाता है।

कार्यों को पूरा किया। स्थूल दृष्टि से इन महापुरुषों के साथ गुरुओं का जो व्यवहार था, वह 'हृदयहीनता' का कहा जा सकता है। पर सच्ची बात यह है कि उन्होंने स्वयं निन्दा और बुराई को अपने ऊपर ओढ़कर शिष्यों को अनन्त काल के लिए प्रकाशवान् एवं अमर कर दिया। यदि कठिनाइयों में होकर राजा हरिश्चन्द्र को न गुजरना पड़ा होता, तो वे भी असंख्यों राजा, रईसों की भाँति विस्मृति के गर्त में चले गये होते।

अग्नि-दीक्षा पाकर शिष्य गुरु से पूछता है कि-''आदेश कीजिए, मैं आपके लिए क्या गुरुदक्षिणा उपस्थित करूँ?'' गुरु देखता है कि शिष्य की मनोभूमि, सामर्थ्य, योग्यता, श्रद्धा और त्याग वृत्ति कितनी है, उसी आध ार वह उससे गुरुदक्षिणा माँगता है। यह याचना अपने लिए रुपया, पैसा, धन, दौलत देने के रूप में कदापि नहीं हो सकती। सद्‌गुरु सदा परम त्यागी, अपरिग्रही, कष्टसहिष्णु एवं स्वल्प सन्तोषी होते हैं। उन्हें अपने शिष्य से या किसी से कुछ माँगने की आवश्यकता नहीं होती। जो गुरु अपने लिए कुछ माँगता है वह गुरु नहीं, ऐसे लोग गुरु जैसे परम पवित्र पद के अधिकारी कदापि नहीं हो सकते। अग्नि-दीक्षा देकर गुरु जो कुछ माँगता है, वह शिष्य को अधिक उज्ज्वल, अधिक सुदृढ़, अधिक उदार, अधिक तपस्वी बनाने के लिए होता है। यह याचना उसके यश का विस्तार करने के लिए, पुण्य को बढ़ाने के लिए एवं उसे त्याग का आत्मसन्तोष देने के लिए होती है। 'गुरुदक्षिणा माँगिये' शब्दों में शिष्य कहता है कि ''मैं सुदृढ़ हूँ, मेरी आत्मिक स्थिति की परीक्षा लीजिए।'' स्कूल कालेजों में परीक्षा ली जाती है। उत्तीर्ण छात्र की योग्यता एवं प्रतिष्ठा को वह उत्तीर्णता का

अग्नि-दीक्षा पाकर शिष्य गुरु से पूछता है कि-''आदेश कीजिए, मैं आपके लिए क्या गुरुदक्षिणा उपस्थित करूँ?'' गुरु देखता है कि शिष्य की मनोभूमि, सामर्थ्य, योग्यता, श्रद्धा और त्याग वृत्ति कितनी है, उसी आधार वह उससे गुरुदक्षिणा माँगता है। य

प्रमाण पत्र अनेक गुना बढ़ा देता है। परीक्षा न ली जाए तो योग्यता का क्या पता चले? किसी व्यक्ति की महानता का पुण्य प्रसार करने के लिए, उसके गौरव को सर्वसाधारण पर प्रकट करने के लिए, साधक को अपनी महानता पर आत्म विश्वास कराने के लिए गुरु अपने शिष्य से गुरुदक्षिणा माँगता है। शिष्य उसे देकर धन्य हो जाता है। प्रारम्भिक कक्षा में मन्त्र-दीक्षा का शिष्य सामार्थ्यानुसार गुरु पूजन करता है। श्रद्धा रखना और उनकी सलाहों से अपने दृष्टिकोण को सुधारना, बस इतना ही उसका कार्यक्षेत्र है। न वह शिष्य दक्षिणा माँगने के लिए गुरु से कहता है और न गुरु उससे माँगता ही है। दूसरी कक्षा का शिष्य अग्नि दीक्षा लेकर 'गुरु दक्षिणा' माँगने के लिए, उसकी परीक्षा लेने के लिए प्रार्थना करता है।

गुरु इस कृपा को करना स्वीकार करके शिष्य की प्रतिष्ठा, महानता, कीर्ति एवं प्रामाणिकता में चार चाँद लगा देता है। गुरु की याचना सदैव ऐसी होती है जो सबके लिए, सब दृष्टियों से परम कल्याणकारी हो, उस व्यक्ति का तथा समाज का उससे भला होता हो। कई बार निर्बल मनोभूमि के लोग भी आगे बढ़ाए जाते हैं, उनसे गुरुदक्षिणा में ऐसी छोटी चीज माँगी जाती है जिसे सुनकर हँसी आती है। अमुक फल, अमुक शाक, अमुक मिठाई आदि का त्याग कर देने जैसी याचना कुछ अधिक महत्त्व नहीं रखती। पर शिष्य का मन हलका हो जाता है, वह अनुभव करता है कि मैंने त्याग किया, गुरु के आदेश का पालन किया, गुरु दक्षिणा चुका दी, ऋण से उऋण हो गया और परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। बुद्धिमान् गुरु साधक की मनोभूमि और आन्तरिक स्थिति देखकर ही उसे तपाते हैं।

❑

बोया व काटा सिद्धांत

डॉ. अनिल त्रिपाठी

एक बार एक व्यक्ति रेगिस्तान में कहीं भटक गया। उसके पास खाने-पीने की जो थोड़ी बहुत चीजें थीं, वो जल्द ही खत्म हो गयीं और पिछले दो दिनों से वह पानी की एक-एक बूंद के लिए तरस रहा था। वह मन ही मन जान चुका था कि अगले कुछ घण्टों में अगर उसे कहीं से पानी नहीं मिला तो उसकी मौत निश्चित है । पर कहीं न कहीं उसे ईश्वर पर यकीन था कि कुछ चमत्कार होगा और उसे पानी मिल जाएगा। तभी उसे एक झोंपड़ी दिखाई दी। उसे अपनी आँखों पर यकीन नहीं हुआ। पहले भी वह मृगतृष्णा और भ्रम के कारण धोखा खा चुका था। पर बेचारे के पास यकीन करने के अलावा कोई चारा भी तो न था। आखिर यह उसकी आखिरी उम्मीद जो थी। वह अपनी बची-खुची ताकत से झोंपडी की तरफ चलने लगा। जैसे-जैसे करीब पहुँचता, उसकी उम्मीद बढती जाती और इस बार भाग्य भी उसके साथ था। सचमुच वहाँ एक झोंपड़ी थी। पर यह क्या? झोंपडी तो वीरान पड़ी थी। मानो सालों से कोई वहाँ भटका न हो। फिर भी पानी की उम्मीद में वह व्यक्ति झोंपड़ी के अन्दर घुसा। अन्दर का नजारा देख उसे अपनी आँखों पर यकीन नहीं हुआ।

एक बार एक व्यक्ति रेगिस्तान में कहीं भटक गया। उसके पास खाने-पीने की जो थोड़ी बहुत चीजें थीं, वो जल्द ही खत्म हो गयीं और पिछले दो दिनों से वह पानी की एक-एक बूंद के लिए तरस रहा था। वह मन ही मन जान चुका था कि अगले कुछ घण्टों में अगर उसे कहीं से पानी नहीं मिला तो उसकी मौत निश्चित है ।

वहाँ एक हैण्ड-पम्प लगा था। वह व्यक्ति एक नयी उर्जा से भर गया। पानी की एक-एक बूंद के लिए तरसता वह तेजी से हैण्ड-पम्प को चलाने लगा। लेकिन हैण्ड पम्प तो कब का सूख चुका था। वह व्यक्ति निराश हो गया, उसे लगा कि अब उसे मरने से कोई नहीं बचा सकता। वह निढाल होकर गिर पड़ा। तभी उसे झोंपड़ी की छत से बंधी पानी से भरी एक बोतल दिखाई दी। वह किसी तरह उसकी तरफ लपका और उसे खोलकर पीने ही वाला था कि तभी उसे बोतल से चिपका एक कागज दिखा उस पर लिखा था- इस पानी का प्रयोग हैण्ड पम्प चलाने के लिए करो और वापिस बोतल भरकर रखना ना भूलना? यह एक अजीब सी स्थिति थी। उस व्यक्ति को समझ नहीं आ रहा था कि वह पानी पीये या उसे हैण्ड-पम्प में डालकर चालू करे। उसके मन में तमाम सवाल उठने लगे, अगर पानी डालने पर भी पम्प नहीं चला। अगर यहाँ लिखी बात झूठी हुई और क्या पता जमीन के नीचे का पानी भी सूख चुका हो। लेकिन क्या पता पम्प चल ही पड़े, क्या पता यहाँ लिखी बात सच हो, वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे?

फिर कुछ सोचने के बाद उसने बोतल खोली और कांपते हाथों से पानी पम्प में डालने लगा। पानी डालकर उसने भगवान से प्रार्थना की और पम्प चलाने लगा। एक, दो, तीन और हैण्ड-पम्प से ठण्डा-ठण्डा पानी निकलने लगा। वह पानी किसी अमृत से कम नहीं था। उस व्यक्ति ने जी भरकर पानी पिया, उसकी जान में जान आ गयी। दिमाग काम करने लगा। उसने बोतल में फिर से पानी भर दिया और उसे छत से बांध दिया। जब वो ऐसा कर रहा था, तभी उसे अपने सामने एक और शीशे की बोतल दिखी। खोला तो उसमें एक पेंसिल और एक नक्शा पड़ा हुआ था। जिसमें रेगिस्तान से निकलने का रास्ता था।

उस व्यक्ति ने रास्ता याद कर लिया और नक्शे वाली बोतल को वापस वहीं रख दिया। इसके बाद उसने अपनी बोतलों में जो पहले से ही उसके पास थीं। पानी भरकर वहाँ से जाने लगा। कुछ आगे बढ़कर उसने एक बार पीछे मुड़कर देखा, फिर कुछ सोचकर वापिस उस झोपडी में गया और पानी से भरी बोतल पर चिपके कागज को उतारकर उस पर कुछ लिखने लगा। उसने लिखा - मेरा यकीन करिए यह हैण्ड-पम्प काम करता है।

यह कहानी सम्पूर्ण जीवन के बारे में है। यह हमें सिखाती है कि बुरी से बुरी स्थिति में भी अपनी उम्मीद नहीं छोडनी चाहिए और इस कहानी से यह भी शिक्षा मिलती है कि कुछ बहुत बड़ा पाने से पहले हमें अपनी ओर से भी कुछ देना होता है। जैसे उस व्यक्ति ने नल चलाने के लिए मौजूद पूरा पानी उसमें डाल दिया। देखा जाए तो इस कहानी में पानी जीवन में मौजूद महत्वपूर्ण चीजों को दर्शाता है, कुछ ऐसी चीजें जिनकी हमारी नजरों में विशेष कीमत है। किसी के लिए मेरा यह सन्देश ज्ञान हो सकता है तो किसी के लिए प्रेम तो किसी और के लिए पैसा। यह जो कुछ भी है, उसे पाने के लिए पहले हमें अपनी तरफ से उसे कर्म रुपी हैण्ड-पम्प में डालना होता है और फिर बदले में आप अपने योगदान से कहीं अधिक मात्रा में उसे वापिस पाते हैं।

❑

श्रद्धा का प्रकटीकरण करने की आवश्यकता

प्रो. वीरेन्द्र अग्रवाल

एकलव्य भील ने मिट्टी के द्रोणाचार्य बनाकर उससे बाण-विद्या सीखी थी और उस मूर्ति ने उस भील को बाण-विद्या में इतना पारंगत कर दिया था कि उसके द्वारा बाणों से कुत्ते का मुँह सी दिये जाने पर द्रोणाचार्य से प्रत्यक्ष पढ़ने वाले पाण्डवों को भी ईर्ष्या हुई थी। स्वामी रामानन्द के मना करते रहने पर भी कबीर उनके शिष्य बन बैठे और अपनी तीव्र श्रद्धा के कारण वह लाभ प्राप्त किया, जो उनके विधिवत् दीक्षित शिष्यों में से एक भी प्राप्त न कर सका था। रजोधर्म होने पर गर्भाशय में एक बूँद वीर्य का पहुँच जाना गर्भ धारण कर देता है, पर जिसे रजोदर्शन न होता हो, उस बन्ध्या स्त्री के लिए पूर्ण पुरुषत्व शक्ति वाला पति भी गर्भ स्थापित नहीं कर सकता। श्रद्धा एक प्रकार का रजोधर्म है जिससे साधक के अन्त:करण में सदुपदेश जमते और फलते-फूलते हैं। अश्रद्धालु के मन पर ब्रह्मा का उपदेश भी कुछ प्रभाव नहीं डाल सकता। श्रद्धा के अभाव में किसी महापुरुष के दिन-रात साथ रहने पर भी कोई व्यक्ति कुछ लाभ नहीं उठा सकता और श्रद्धा होने पर दूरस्थ व्यक्ति भी लाभ उठा सकता है। इसलिए आरम्भिक कक्षा के मन्त्र दीक्षित को गुरु के प्रति तीव्र श्रद्धा की धारणा करनी पड़ती है।

विचारों को मूर्त रूप देने के लिए उनको प्रकट रूप से व्यवहार में लाना पड़ता है। जितने भी धार्मिक कर्मकाण्ड, दान, पुण्य, व्रत, उपवास, हवन, पूजन, कथा, कीर्तन आदि हैं, वे सब इसी प्रयोजन के लिए हैं कि आन्तरिक श्रद्धा व्यवहार में प्रकट होकर साधक के मन में परिपुष्ट हो जाए। गुरु के प्रति मन्त्रदीक्षा में 'श्रद्धा' की शर्त होती है। श्रद्धा न हो या शिथिल हो तो वह दीक्षा केवल चिह्न पूजा मात्र है। अश्रद्धालु की गुरु दीक्षा से कुछ विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। दीक्षा के समय स्थापित हुई श्रद्धा कर्मकाण्ड के द्वारा सजग रहे, इसी प्रयोजन के लिए समय-समय पर गुरु पूजन किया जाता है।

विचारों को मूर्त रूप देने के लिए उनको प्रकट रूप से व्यवहार में लाना पड़ता है। जितने भी धार्मिक कर्मकाण्ड, दान, पुण्य, व्रत, उपवास, हवन, पूजन, कथा, कीर्तन आदि हैं, वे सब इसी प्रयोजन के लिए हैं कि आन्तरिक श्रद्धा व्यवहार में प्रकट होकर साधक के मन में परिपुष्ट हो जाए।

दीक्षा के समय वस्त्र, पात्र, पुष्प, भोजन, दक्षिणा द्वारा गुरु का पुजन करते हैं। गुरुपूर्णिमा (आषाढ़ सुदी) को यथा शक्ति गुरु के चरणों में श्रद्धांजलि के रूप में कुछ भेंट पूजा अर्पित करते हैं। यह प्रथा अपनी आन्तरिक श्रद्धा को मूर्त रूप देने, बढ़ाने एवं परिपुष्ट करने के लिए है। केवल विचार मात्र से कोई भावना परिपक्व नहीं होती क्रिया और विचार दोनों के सम्मिश्रण से एक संस्कार बनता है जो मनोभूमि में स्थिर होकर आशाजनक परिणाम उपस्थित करता है।

प्राचीनकाल में यह नियम था कि गुरु के पास जाने पर शिष्य कुछ वस्तु भेंट के लिए ले जाता था, चाहे वह कितने ही स्वल्प मूल्य की क्यों न हो? समिधा की लकड़ी को हाथ में लेकर शिष्य गुरु के सम्मुख जाते थे, इसे 'समित्पाणि' कहते थे। वे समिधायें उनकी श्रद्धा की प्रतीक होती हैं चाहे उनका मूल्य कितना ही कम क्यों न हो। शुकदेव जी जब राजा जनक के पास ब्रह्मविद्या की शिक्षा लेने गये, तो राजा जनक मौन रहे, उन्होंने एक शब्द भी उपदेश नहीं दिया। शुकदेव जी वापस लौट आये। पीछे उन्हें ध्यान आया कि भले ही मैं संन्यासी हूँ और राजा जनक गृहस्थ हैं, पर जबकि मैं उनसे कुछ सीखने गया, तो अपनी श्रद्धा का प्रतीक साथ लेकर जाना चाहिए था। दूसरी बार शुकदेवजी हाथ में समिधायें लेकर नम्र भाव से उपस्थित हुए, तो उनको विस्तार पूर्वक ब्रह्म का रहस्य समझाया।

श्रद्धा न हो तो सुनने वाले का और कहने वाले का श्रम तथा समय निरर्थक जाता है। इसलिए शिक्षण के समान ही श्रद्धा बढ़ाने का भी प्रयत्न जारी रखना चाहिए। निर्धन व्यक्ति भले ही न्यूनतम मूल्य की वस्तुयें ही क्यों न भेंट करें, उन्हें सदैव गुरु को बार-बार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह भेंट पूजन एक प्रकार का आध्यात्मिक व्यायाम है, जिससे श्रद्धा रूपी 'ग्रहण शक्ति' का तीव्र विकास होता है। श्रद्धा ही वह अस्त्र है, जिससे परमात्मा को पकड़ा जा सकता है। भगवान् और किसी वस्तु से वश में नहीं आते, वे केवल मात्र श्रद्धा के ब्रह्मपाश में फँसकर भक्त के गुलाम बनते हैं। ईश्वर को परास्त करने का एटम बम श्रद्धा ही है। इस महानतम दैवी सम्मोहनास्त्र को बनाने और चलाने का प्रारम्भिक अभ्यास गुरु से ही किया जाता है। जब यह भली प्रकार हाथ में आ जाता है, तो उससे भगवान् को वश में कर लेना साधक के बायें हाथ का खेल हो जाता है। प्रारंम्भिक कक्षा का रसास्वादन करने पर साधक की मनोभूमि काफी सुदृढ़ और परिपक्व हो जाती है। वह भौतिकवाद की तुच्छता और आत्मिकवाद की महानता व्यावहारिक दृष्टि से, वैज्ञानिक दृष्टि से, दार्शनिक दृष्टि से समझ लेता है, तब उसे पूर्ण विश्वास हो जाता है कि मेरा लाभ आत्मकल्याण के मार्ग पर चलने में ही है। श्रद्धा परिपक्व होकर जब निष्ठा के रूप में परिणत हो जाती है, तो वह भीतर से काफी मजबूत हो जाता है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसमें इतनी दृढ़ता होती है कि वह कष्ट सह सके, तप कर सके, त्याग की परीक्षा का अवसर आये तो विचलित न हो। जब ऐसी पक्की मनोभूमि होती है तो 'गुरु' द्वारा उसे अग्नि-दीक्षा देकर कुछ और गरम किया जाता है जिससे उसके मैल जल जायें, कीर्ति का प्रकाश हो तथा तप की अग्नि में पककर वह पूर्णता को प्राप्त हो। ❑

प्रारम्भिक कक्षा का रसास्वादन करने पर साधक की मनोभूमि काफी सुदृढ़ और परिपक्व हो जाती है। वह भौतिकवाद की तुच्छता और आत्मिकवाद की महानता व्यावहारिक दृष्टि से, वैज्ञानिक दृष्टि से, दार्शनिक दृष्टि से समझ लेता है, तब उसे पूर्ण विश्वास हो जाता है कि मेरा लाभ आत्मकल्याण के मार्ग पर चलने में ही है।

बनावटी दर्द

अभिषेक शुक्ला

माँ ने बच्चे को चुप कराया, उसे मिठाई दी और जो कुछ भी थोड़ी बहुत खीर बची थी उसे ठंडा करके बच्चे को खिलाया। बच्चा बोला कि माँ तुम मुझे इतना चाहती हो की तुमने खीर को भी कुछ नहीं समझा। माँ बोली! हाँ बेटा।

माँ एक दिन चौके में खीर बना रही थी। उसका बच्चा कहीं खेलते-खेलते गिर पड़ा और बड़ी जोर से चीख कर रोया। तो, माँ खीर को छोड़कर भागी और बच्चे को उठा लिया तब तक खीर में उबाल आ गयी। वह सारी खीर जमीन पर गिर गई।

माँ ने बच्चे को चुप कराया, उसे मिठाई दी और जो कुछ भी थोड़ी बहुत खीर बची थी उसे ठंडा करके बच्चे को खिलाया। बच्चा बोला कि माँ तुम मुझे इतना चाहती हो की तुमने खीर को भी कुछ नहीं समझा। माँ बोली! हाँ बेटा।

बच्चे को प्यार मिला और फिर खेलने लगा।

एक दिन बच्चे ने सोचा की उस दिन तो माँ ने बहुत प्यार किया था और खीर भी खिलाई थी।

आज कई दिनों से खीर भी नहीं बनी। यह सोच वह जमीन पर गिरा और बड़ी जोर से 'चिल्लाया' माँ चौके मैं बैठी रही और टस से मस नहीं हुई, कि उसके पास जाये। अपना खाना बनाती रही और बच्चा चिल्लाता रहा। वह घंटों चिल्लाता रहा पर माँ उठकर नहीं गई।

फिर वह अपने आप हाथ-पैर झाड़ते हुए आया और बोला-माँ, उस दिन मैं गिरा था तो तुम दौड़ कर चली आयी थीं और आज मैं घंटों रोया तुम क्यों नहीं आयीं? माँ कहने लगी की बेटा! वह दर्द नहीं था। अगर वह दर्द होता तो मैं सेकंड भी चौके मैं नहीं बैठ सकती थी। आज तो तुम्हारा बनावटी दर्द था।

वास्तव में इसमें कोई शक नहीं है की जिनको सही दर्द है, उनके लिए परमात्मा, महात्मा हमेशा तैयार खड़े हैं। अगर तुममें बनावटी दर्द है तो न परमात्मा, न महात्मा। अब कौन बनावट कर रहा है। इसको आप अपने आप में परख लो।

❑

व्रत त्योहार

ता.	व्रत एवं त्योहार

दिसम्बर-2016

1. चन्द्रदर्शन, ता. 3-चतुर्थी व्रत
4. श्री बांके बिहारीजी प्राकट्योत्सव, राम जानकी विवाहोत्सव
5. स्कंद षष्ठी, चम्पा षष्ठी
6. मित्र सप्तमी, नरसी मेहता जयंती
10. मोक्षदा एकादशी व्रत, गीता जयंती
11. प्रदोष व्रत
12. पिशाच मोचन श्राद्ध
13. मार्गशीर्ष पूर्णिमा, पूर्णिमा व्रत, श्री अन्नपूर्णा जयंती, श्री विद्या जयंती, श्री त्रिपुर सुन्दरी जयंती, श्री दत्त जयंती
15. धनु संक्रान्ति रात्रि 20/33
17. चतुर्थी व्रत चन्द्रोदय 21/22
24. सफला एकादशी व्रत (सर्वे.)
25. सरूप द्वादशी
26. प्रदोष व्रत
27. मासिक शिवरात्रि व्रत
29. देवपितृकार्य अमावस्या, ता. 31-चन्द्रदर्शन

जनवरी-2017

1. चतुर्थी व्रत
3. छप्पन भोग गरुण गोविन्द (मथुरा)
5. गुरु गोविन्द सिंह प्रकाशोत्सव
8. पुत्रदा एकादशी व्रत (स्मार्त)
9. पुत्रदा एकादशी वैष्णव
10. प्रदोष व्रत
11. पूर्णिमा व्रत
12. पौषी पूर्णिमा, माघ स्नान प्रा., शाकम्भरी जयंत, विवेकानन्द जयंती
13. लोहड़ी पर्व (दिल्ली, पंजाब, हरियाणा)
14. मकर संक्रान्ति पुण्यकाल पूरे दिन, पोंगल (दक्षिण भारत)
15. सकट चौथ, गणेश चतुर्थी व्रत चंद्र रात्रि 20/54
19. कालाष्टमी, श्रीरामानन्दाचार्य जयन्ती
23. षट्तिला एकादशी व्रत (सर्वे.), नेताजी सुभाषचन्द्र जयन्ती
25. प्रदोष व्रत,
26. मासिक शिवरात्रि
27. देवपितृ कार्य अमावस्या, मौनी अमावस्या
28. गुप्त नवरात्र प्रारंभ, लाजपत राय जयंती
30. गौरी तृतीया व्रत
31. तिल वरद चतुर्थी

सदस्यता फार्म

(यह फार्म भरकर डी.डी./मनी ऑर्डर के साथ भिजवाएं)

हां, मैं 'शाश्वत ज्योति' पत्रिका का सदस्य बनना चाहता/ चाहती हूं।

1 वर्ष 300 रुपये ☐

5 वर्ष 1500 रुपये ☐

आजीवन 5000 रुपये ☐

रुपये (शब्दों में)..

....

रुपये के लिए 'डिवाईन श्रीराम इण्टरनेशनल चेरीटेबल ट्रस्ट, हरिद्वार (हेतु शाश्वत ज्योति)' के नाम से डी.डी./मनी ऑर्डर नम्बर ....

दिनांक .... बैंक ....

.... संलग्न है।

नाम ....

पता ....

....

शहर .... राज्य ....

पिन कोड .... फोन ....

फैक्स .... मोबाइल ....

ई-मेल ....

नोट : एक से अधिक सदस्यता लेने के लिए आप इस फार्म की फोटो कॉपी करवा सकते हैं।

आदर्श आयुर्वेदिक फार्मेसी, कनखल, हरिद्वार (उत्तराखंड)
फोन- 01334-262600, मोबाइल-09897034165
E-mail: Umakantmaharaj@hotmail.com

यहाँ से काटिये